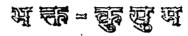
ž

सचित्र, संक्षिप्त भक्त-बरित-माला, ७



सम्पादक-हनुमानप्रसाद पोदार



भक्त-कुसुम

सुद्रक तथा प्रकाशक धनस्यामदास गीताप्रेस, गोरखपुर

> सं॰ १९९० प्रथम संस्करण ५२५० मृल्य ।/) पाँच आना

> > पता-गीताप्रेस, गोरखपुर

श्रीहरिः

निवेदन

यह मकचिरतमालाका सातवाँ पुष्प है। इसकी पहली, तीसरी, श्रीधी और पाँचयों कथा भक्तचिरतसे ली गयी है। दूसरी मकपरम्परासे और छटी कविचरित्रसे। कथाएँ सभी रोचक, शिक्षापद और भक्तिवर्धक हैं। आशा है प्रेमी पाठक इनसे लाभ उठावेंगे।

मीताप्रेस, } गोरखपुर }

हनुमानप्रसाद पोद्दार

ॐ विषय-सूची

****	e/							
नाम			पृष्ठ					
१-मक्त जगन्नाथदास भागवतकार								
२-श्रीहरिमक हिम्मतदास (लेखक-श्रीपीताम्यररावजी भट्टा-								
चार्य काव्यपुराणभूपण)		•••	१४					
२-मक वालीग्रामदास	***	•••	२६					
४-मक्त दक्षिणी तुलसीदासजी	•••	***	७,०					
५-भक्त गोविन्द्वास	***	***	Ęų,					
६-मक्त हरिनारायण (लेखक-श्रीगीपालजी ब्रह्मचारी)								
** ***********************************								
चित्र-सूची								
नाम			पृष्ठ					
१-भक्त जगन्नाथदास भागवतकार (रंगीन)								
२-श्रीहरिमक हिम्मतदास	(,,)	•••	१४					
३-भृक्त बालीयामदास	(,,)	•••	२६					
४–भक्त दक्षिणी तुलसीदासजी	(,,)	***	५०					
५-भक्त गोविन्ददास	(")	•••	६५					
६–भक्त हरिनारायण	(")	•••	66					

्श्रीहरिः



क्रांचायदास जातिके ब्राह्मण थे और श्रीजगन्नायपुरीमें निवास करते थे। विद्या, श्रीजगन्नायपुरीमें निवास करते थे। विद्या, विनय और साधुस्त्रभावके होनेके कारण इनको लेग बहुत अच्छी नजरसे देखते थे। यद्यपि देखनेमें इन्हें कोई दुःख न था, परन्तु ये सदा चिन्तामें ही इबे रहते थे। चिन्ता किसी सांसारिक मोग-वस्तुके प्राप्त करनेकी नहीं थी, वह थी भगवान्को पानेकी! वह चौवीसों घण्टे इन्हों विचारोंमें रहते और वारम्बार भगवान्से प्रार्थना करते कि हि प्रभो! इस अपार भवसागरसे पार करनेवाले तुन्हीं एकमात्र कर्णधार हो, जबतक तुन्हारों कृपा नहीं होती तवतक किसी भी उपायसे जीवका उद्धार नहीं हो सकता। नाथ! मैं दीन, हीन, शक्तिहीन पामर प्राणी हूँ, मुझमें ताकत नहीं कि मैं मनको

्विपयोंसे हटाकर आपके चरणोंमें लगाऊँ । मैं तो विपयविमोहित हैं मोहके सागरमें हुन रहा हूँ । तुम्ही हाय पकड़कर मुझे निकालो तो निकल सक्गा। दयामय ! मुझ-सा दीन और कौन होगा जो अपनी दीनताके प्रकट करनेमें भी असमर्थ है, जो दीनवन्धुके चरणोंमें उपस्थित होकर इतना भी नहीं कह सकता कि 'मैं दीन हूँ।' अभिमान सदा-सर्वदा दीनताका वाधक बना ही रहता है । मुझे अब कोई भी मार्ग नहीं सुझता । करुणानिधे ! इस पतित प्राणीपर दया करो, अपने भजन करनेकी शक्ति दो और किसी दिन अपनी वाँकी झाँकी दिखाकर छतार्थ कर दो ।'

इस प्रकार प्रार्थना और चिन्तन करते बहुत-सा समय बीत गया। एक दिन रात्रिके समय एकान्तमें जगनाथदास विद्यंनिपर पड़े हुए मन-ही-मन प्रार्थना करने लगे—'प्रभो ! बहुत दिन हो गये। अब तो अपनी छपाकी एक किरण मुझपर भी डालो । में अधिकारी नहीं, इसिलये मुझे भिक्त और प्रेम मत हो, परन्तु अपनी इतनी महिमा तो बता दो कि जिससे में दृढ़ विश्वासके साथ तुम्हारी भजन कर सक्ष्म । हे दयामय ! में तुम्हारे शरण हूँ । तुम्हारे सिवा लोक-परलोकमें मेरा कोई नहीं है । मारो या तारो, जो कुल हूँ, तुम्हारा ही हूँ ।' यों कहते-कहते और मनमें प्रभुका ध्यान करते-करते जगनाथदासको नीद आ गयी। आज दयामय-का हृदय द्वित हो गया। भगवान बड़े कोमल-हृदय और भक्त-वत्सल हैं। एक ही शब्दसे द्वित हो जाते हैं। अवस्य ही

यह शब्द द्रवितिचित्तसे निकला हुआ और सचा होना चाहिये। जिस दिन, जिस क्षण प्रार्थनामें भक्तका चित्त पिश्रल जाता है और वह भगवान्की कृपांपर पूर्ण विश्वासकर अपनेको उनके चरणोंमें डाल देता है, वस, उसी क्षण भगवान् उसकी प्रार्थना पूर्ण कर देते हैं। आज जगन्नाथकी मनोकामना पूर्ण करनेकं लिये शरणागत-भयहारी भगवान् शङ्क, चक्र, गदा, पद्मधारी चतुर्भुज साकार खरूपसे खन्नमें जगन्नाथके सामने प्रकट हुए और हँसकर बोले—'प्यारे जगन्नाथ! त किसलिये इतना घनरा रहा है! अरे, जिसने एक बार भी सच्चे हृदयसे मेरा आश्रय ले लिया, उसे भय कहाँ है!

सनम्य होहि जीव मोहि जवहीं। कोटि जनम अध नासी तबहीं॥

यह मेरा वत है। आज तेरा उद्घार हो चुका। त् निर्भय हो चुका। अब त् मेरा एक काम कर। 'भागवत' भवसागरसे तारनेके छिये एक सुदृढ़ जहाज है। मेरे भावसे पूर्ण होकर ही मेरे ही ख़रूप व्यासदेवने इसकी रचना की है। राजा परीक्षित गुकदेव मुनिसे इसी भागवतको सुनकर सहज ही भवसागरसे तर गया था। भागवत मेरा खरूप है। अत्पव त् अपनी प्राकृत भाषामें इस महापुराणका समश्चोकी अनुवाद कर। इससे त् तो पवित्र होगा ही, अनेकों प्राणियोंको भी पवित्र कर सकेगा। जल्दीसे इस कामको करके जगत्का मङ्गळ कर और मङ्गळमय वन। इसप्रकार प्रभुकी आज्ञा मिळनेपर खममें ही जगनाथदासने

कहा- 'प्रभो ! मैं महामूर्ख हूँ । आपकी आज्ञाका पालन किस तरह कर सक्ँगा ? अपार महिमावाले श्रीमद्रागवत-ग्रन्थका प्राकृत भाषामें अनुवाद मुझसे क्योंकर हो सकेगा ?' भगवान्ने उत्तर दिया- 'वेटा ! ववरा नहीं । मेरी शक्तिसे क्या नहीं हो सकता ? त निर्भय-चित्तसे प्रनथ-निर्माणके लिये तैयार हो जा और मैं तेरे हृदय-कमलपर वैठकर जो कुछ कहूँ, उसीको छिखता चला जा।' इतना कहकर भगवान् अन्तर्धान हो गये । जगनाथदासकी नींद ट्रेटी । वह एकदम उठ वैठे । प्रभुके दर्शन होनेसे आज उनके आनन्दका पार नहीं है। परम विश्वासी भक्त कागज, कल्म लेकर भगवान्की आज्ञा पालन करने बैठे, परन्तु लिखें क्या ? ऑंसुओंके प्रवाहसे सारे अङ्ग भीग गये । वाह्य दृष्टि रुक्त गयी । अन्तर्दृष्टिसे देखा. तो हृदयमें भगवान् अन्तर्विहारी विष्णुकी तेजोमयी दिव्य छिव विराजित दिखलायी दी । इन्द्रियोंके सारे दरवाजे बन्द हो गये । कलम चलने लगी और लगातार पन्ने-के-पन्ने लिखे जाने छगे। दसरे दिन प्रातःकाल फिर यही दशा हुई। यों प्रतिदिन होते-होते कुछ समयमें सम्पूर्ण भागवतका पर्म रमणीय भागमें पद्यानुवाद हो गया । अत्यन्त कठिन-से-कठिन मूल श्लोकोंपर भी कोमलकान्त पदावली रची गयी । तदनन्तर जगन्नायदासने प्रभुके आदेशातुसार इस कल्याणकारी भागवतका गानकर मनुष्योंके पाप-तापका विनाश करना शुरू किया।

जगन्नाथदास भागवतका कीर्तन करते हुए सारे देशमें घूमने छगे। उनका प्रेम और माधुर्य-मरा गायन सुनकर मनुष्य ही नहीं,

पशु-पक्षीतक भी मुग्ध होने छगे। प्रथम तो मधुर खरका सङ्गीत खामायिक ही लोगोंके चित्तको खींचता है, फिर यदि वह केवल निष्कामभावसे भगवान्की आज्ञानुसार जीवोंके कल्याणके ही लिये गाया जाय और वह भी श्रीमङ्गागवत-जैसे प्रेमामृतपूर्ण प्रन्थ-का सार हो तो. उससे समस्त प्राणियोंके प्रसन होकर खिंच जानेमें आश्चर्य ही क्या है ? जगनाथदास जब रास्तेमें चलते हुए भागवतका गान करते. तब उनके नेत्रोंसे आनन्दके आँखओंकी झड़ी लग जाती, प्रेमके आवेशमें वाणी गहद हो जाती, शरीर लड़खड़ाने लगता, प्रायेक अङ्गमें भक्तिकी तरङ्गें उछलती हुई दिखलायां देतीं । प्रेम और करुणापूर्ण मधुर खरसे दिशाएँ गूँज उठतीं । उनको इस अवस्थामें देखकर वाळक, चृद्ध, युवा, पुरुप और स्त्री सभीके मन खिंच जाते और सभी छोग बड़े आदर-सत्कारके साथ अपने-अपने घरोमें है जाकर उन्हें घेरकर बैठ जाते और अपने प्यारे बन्धके समान उनके मुखसे भगवान् श्रीकृष्णके पर्म मधुर चरित्रोंको सुन-सुनकर कृतार्थ होते । आज इसके तो कल उसके, यों घर-घरमें जगनाथदासके भागवतका गान होने लगा और लोग भगवान्की मधुर लीलाका आनन्द खटने लगे।

दुष्टोंको न तो हरिचर्चा ही सुहाती है और न किसीका सम्मान ही उन्हें सुखदायी होता है। जगन्नाथदासका आदर-सत्कार ऐसे छोगोंकी दृष्टिमें खटकने छगा, उनकी निन्दाप्रिय जिद्वाएँ जगन्नाथदासकी निन्दा करनेके छिये छपछपाने छगी। किसीकी प्रशंसा सुनकर उसकी निन्दा करना, अच्छेमें भी बुरी वातका आरोपण करना तथा अकारण ही दूसरोंका अनिष्ट करना, यही खळोंका खभाव होता है। कोआ खभावसे ही उत्तम वस्तुओंको श्रष्ट करता है। कुत्ते पवित्र दृक्षों, वेळों और स्थळोंपर पेशाव करते हैं, चूहे विना हो किसी खार्यके छोगोंके कपड़े काट जाते हैं और साँप छोगोंको अकारण ही इँस जाता है परन्तु इसमें उसको कोई छाम नहीं होता; इसी प्रकार दुष्टजन साधुओं-की निन्दा करने और उनपर दोप मँदनेमें ही सुख मानते हैं। तुछसीदासजी महाराजने ऐसे दुष्टोंके छक्षण वतछाते हुए कहा है— खळिंह हृद्य अति ताप विसेखी। जरिंह सदा पर-सम्पित देखी॥ जहाँ कहुँ निन्दा सुनिंह पराई। हरपिंह मनहु परी निधि पाई॥ काम-क्रोध-मद-छोभ-परायन। निर्दय कपटी कुटिछ मछायन॥ वैर अकारन सब काहुसों। जो कर हित अनहित ताहुसों॥

पर-द्रोही पर-दार-रत, पर-धन पर अपवाद।
ते तर पामर पापमय, देह धरे मनुजाद॥
इसी खमावके कारण दुष्ट-मण्डलीका हृदय जगन्नाथदासका
माज़-सम्मान देखकर दग्ध हो गया। उसने जाल रचा और
उनमेंसे कुछ लोगोंने जाकर राजा प्रतापरुद्धसे यह शिकायत की
कि 'महाराज! आपकी इस पुण्यक्षेत्र पुरी नगरीमें आजकल बड़ा
अनर्थ होने लगा है। जगनाथदास नामका एक पाखण्डी ब्राह्मण
तुल्सीकी माला पहनकर और तिलक-छापे लगाकर नगरके नर-

नारियोंको ठगता फिरता है, जहाँ तहाँ नाचता-गाता है, खियोंमें जाकर बैठता है। सरल-हदयकी खियोंके धन और धर्मको हरण करनेमें वह बड़ा ही चतुर है। उसके कारण पिवत्र पुरी पाप-पुरी हो गया है। आपको हमारी बातका विश्वास न हो तो आप गुप्त क्तोंको मेजकर इस बातका पता लगवा लीजिये। परन्तु यह अनर्थ अब जल्दी ही बन्द होना चाहिये। राजाको इन लोगोंकी बातोंपर विश्वास हो गया। उसने क्तोंके द्वारा पता लगाया। दुष्टोंने उन्हें साथ ले जाकर सैकड़ों खी-पुरुपोंके घेरेमें बैठे जगलाथदासजीको भागवतका गायन करते दिखला दिया और कुल दे-लेकर उनके द्वारा यह कहल्वा दिया कि 'महाराज! शिकायत सची है, जगलायदास वास्तवमें बड़ा अनर्थ कर रहा है और जगह-जगह उसकी पूजा हो रही है।'

राजालोग राजमदके कारण प्रायः अन्धे-बहरे हुआ ही करते हैं। प्रतापरुद्दने तुरन्त जगनाथदासजीको पकड़वाकर मँगवा लिया और उनसे कहा—- 'अरे जगनाथ! तू ऊपरसे तो साधु बना फिरता है और तेरे आचरण इतने दुष्ट हैं। तू दिन-रात लियोंमें बैठकर न माद्दम क्या-क्या गाया करता है। सच-सच बता दे, नहीं तो समझ ले कि तेरे जीवनके दिन पूरे हो गये हैं।'

राजाके क्रोध-भरे बचन सुनकर जगन्नायदासने क्षणभर भगवान्का ध्यानकर निश्चिन्तभावसे कहा—'महाराज ! द्वेपियोंकी बात सुनकर विना खर्य जाँच किये अकारण ही निरपराधको सताना राजाका कर्त्तव्य नहीं है । मैं तो भागवतका गान करता हूँ और ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैदय, शृद्ध या अन्त्यज कोई भी मुझे प्रेमसे चुळाता है, उसीके यहाँ जाकर भागवत सुनाता हूँ । मै वाळक-वृद्ध या ली-पुरुपका जरा भी विचार नहीं करता । भगवान्की दयासे मै ब्रह्मचारी हूँ । पुरुपोंके ळिये पुरुप और स्त्रियोंके ळिये ली-सदश हूँ । मुझे देखकर किसीके मनमें विकार नहीं होता । भगवत्क्रपासे मेरे मनमें भी कोई दृपित भाव कभी नहीं आये ।'

जहाँ द्वेप-बुद्धि होती है, वहाँ सीधी वात भी उल्टी प्रतीत होती है। राजा प्रतापरुद्धने पहलेसे ही जगन्नायदासको दुराचारी समझ लिया या, अतएव उनके कथनका उल्टा अर्थ लगाकर दाँत पीसते हुए राजाने कहा—'मास्त्रम होता है, त बड़ा ही दुष्ट है, कैसी वार्ते गढ़ी हैं? त पुरुपोंके पास पुरुपरूपमें रहता है और खियोंके पास जाते ही खीरूप वन जाता है; वड़ा सिद्ध है न ? तेरी यही सिद्धि सुझे देखनी है। सुझे भी दिखा अपना खीरूप ! यदि न दिखा सका तो याद रख, में ब्राह्मण जानकर तुझपर कुछ भी दया नहीं दिखाऊँगा।' इतना कहकर राजा प्रतापरुद्धने गुस्सेके आवेशमें ही सिपाहियोंसे कहा—'जाओ, इस कपटी दुराचारीको ले जाकर हथकड़ी-वेड़ी डालकर कैदखानेमें वन्द कर दो।' जगन्नाथदासजीने यह वात कभी नहीं कही थी कि में वास्तवमें ही खीरूप वन जाता हूँ। उनका तो भाव ही दूसरा था; परन्तु

राजाको न तो यह बात समझानेका उन्हें अवसर ही मिला और न उन्होंने इस अवस्थामें समझानेकी चेष्टा करनेमें कोई लाभ ही समझा। क्रोधके समय मनुष्य बुद्धिश्रष्ट हो जाता है, उस समय उसे कोई समझाना चाहता है तो उसके गुस्सेका पारा और भी जपर चढ़ जाता है। अस्तु। राजा प्रतापरुद्र महलेंमें चला गया और सिपाहियोंने जगनाथदासजीको बाँधकर कैदखानेमें ले जाकर बन्द कर दिया।

प्रेमी मक्तके छिये खर्ग-नरक एक-से हैं, वह अपने खामीकी रिच देखकर हर जगह उसको अपने साथ समझता हुआ सदा ही आनन्दमें मग्न रहता है। कहा है—

जो रुचि देखी रामकी, विलग होहि तत्काल।
नरक पर दुल सह पे, सुली रहें सब काल॥
पच्यो करें नरकाग्नि पें, पल-पल बाढ़े भेम।
प्रीतमके सुलसों सुली, यही भेमको नेम॥
कहि न जाय मुलसों कछू, श्याम भेमको बात।
नभ-जल-थल-चर-अचर सब,श्याम हिश्याम ल्लात॥

भक्त जगन्नाय कारागारमें परम आनन्दसे प्रभुका ध्यान करने छो । वे प्रममें मतवाले कभी हँसते, कभी रोते, कभी उच्च खरसे कीर्तन करते, कभी दोनों हाथ उठाकर नाचते और कभी चुपचाप समाधिस्य होकर बैठ जाते । एक बार न माछम उनके मनमें क्या भाव आया, वे करुणाकी याचना करते-करते बड़े ही कातर

ŧ

खरमें भगवान्से प्रार्थना करने छगे। उन्होंने कहा- प्रमो! राजाने मेरी बातका उलटा अर्थ लगाया है, उसका उलटा अर्थ ही सच होना चाहिये । तुम्हारे यहाँ स्त्री-पुरुपका कोई भेर्द नहीं है। और न जीवमें ही स्नीत्व या पुरुपत्व है, यह तो तुम्हारी माया है। इस पुरुष-शरीरको एक वार स्त्री-शरीर वना देना तुम्हारे लिये मामूली खेल है । परन्तु इससे राजाको बहुत विश्वास हो जायगा और तुम्हारे गुणगानमें सुभीता होगा । यदि आपत्ति न हो तो ऐसा कर दो न मेरे मायापति !' प्राणनाथ प्रभुने जगनाथदासकी पुकार सुन छी। जगनाथदास प्रार्थना करते-करते वेसुध हो गये। देखते हैं कि खयं प्रमु उनके सामने खड़े हैं। जेळकी कोठरी असीम तेजसे देदीप्यमान हो रही है। भगवान्ने हँसते हुए अपना भक्तभयहारी करकमळ जगन्नायदासके मस्तकपर रखकर कहा-- 'वत्स ! तेरी यही इच्छा है तो यही सही, मेरा तो काम ही भक्तोंके मनोरथ पूर्ण करना है। मेरी अपनी तो कोई इच्छा होती नहीं, भक्तकी इच्छाको ही मैं अपनी इच्छा मान छेता हूँ । देख, अब तेरा शरीर नर-शरीर न रहकर नारी-शरीर हो गया है । अब फिर जब तू पुनः इसको पुरुप-शरीरमें बदछना चाहेगा, तभी यह पुरुष-शरीर बन जायगा।' भगवान् इतना कहकर अन्तर्धान हो गये । जगनाथदासका खप्त ट्रटा, परन्तु खप्तकी घटनाको प्रत्यक्ष सत्य देखकर उनके आश्वर्य और आनन्द-. का पार नहीं रहा । प्रभुकी महिमा और भक्तवत्सळताका विचार-

कर जगनायदास गहद हो गये । कृतज्ञतासे उनका हृदय भर गया । भगवान्के करकमलके स्पर्शको स्मरण करके वह अपनेको कृतार्थ समझने लगे । उन्होंने मन-ही-मन कहा— 'अहा, जिनके चरणधूलिके स्पर्शसे पत्यरकी अहल्याका उद्धार हो गया, जिनके चरणस्पर्शसे शेपनागका मस्तक विचित्र मणियोंसे विभूपित हो गया, बड़े-बड़े ऋपि-मुनि जिनके चरणोदकको आग्रहपूर्वक मस्तकपर धारण करते हैं, उनके करकमलका स्पर्श मुझे प्राप्त हो गया ! मेरे सद्भाग्यकी समता आज कौन कर सकता है ?'

भगवान्का स्मरण, कीर्तन और प्रार्थना करते-करते रात वीत गया। सिपाहियोंने दरवाजा खोछा। जगनाथदास वाहर निकले, परन्तु पुरुपके बदले सुन्दरी खीको देखकर सिपाही चिकत हो गये। जगनाथदासने उन्हें आश्चर्यचिकत देखकर उनसे कहा— भाइयो। मैं बही जगनाथदास हूँ जिसको कल रातको तुम लोगोंने कोठरांमें नन्द किया था, प्रभुकी लीला वड़ी विचिन्न है, उन्हींकी करुणासे मुझे यह खीत्व प्राप्त हुआ है। तुम मुझे अभी राजाके पास ले चलो। सिपाही राजासे पूछकर खीरूपी जगनाथदासको राजमहलमें ले गये। राजा उनको कमनीय कामिनीम्तिं और रमणी-सुलम अङ्ग-प्रत्यङ्गोंको देखकर आश्चर्यमें ह्व गया। वह विचार करने लगा कि 'क्या बात है। यह वही जगनाथ है या छल करके उसने किसी खीको मेज दिया है। यदि वास्तवमें वही ऐसे मक्तको कैदमें डाळकर वड़ा अपराध किया, परन्तु ऐसा क्योंकर हो सकता है ? सम्भव है इसमें कोई चाळाकी ही हो ।' यों विचारकर और मळीमाँति जाँच कराकर राजाने कहा—'तेरा स्नीरूप ठीक है, इसमें मुझे कोई सन्देह नहीं है । परन्तु त वही जगन्नायदास ही है, इस वातका मुझे क्या पता ? सम्भव है, वह किसी तरह जेळसे निकळ भागा हो और अपनी जगह तुझे यहाँ मेज दिया हो । अतएव त अभी मेरे सामने यहीं पुनः अपने पहळे पुरुपरूपक्षपको प्राप्त हो जाय तो मैं समझूँ कि तेरा स्नीरूप ठीक है ।'

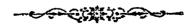
राजाकी वात सुनकर जगनाथदासजीने आँखें मूँदकर प्रमुसे मन-ही-मन प्रार्थना की । तुरन्त हो वल्लाभूपणसहित उनका लिख्य अदृश्य हो गया और वहीं करताल हाथमें लिये जगनाथदास हिरकीर्तन करने लगे । राजासहित सारा-का-सारा राजपरिवार और राजसभाके उपस्थित सदस्यगण आश्चर्यचिकत हो गये । राजाने चरणोंमें प्रणामकर अपराधके लिये क्षमा-याचना की और मलीमाँति आदर-सत्कार करके कहा-'मक्त-चूड़ामणि ! यदि आपने मेरा अपराध क्षमा कर दिया हो तो उसके प्रमाणसहूप आप मुझे मागवत-सङ्गीत सुनाकर मेरे कानों और मनको पवित्र कीजिये और मुझे पापसमूहसे छुड़ाइये ।'

भक्त तो खमावसे ही क्षमाशील और शान्त होते हैं, उन्होंने राजाको सान्त्वना देकर भागवत सुनाना आरम्भ किया। सारी राजसभा उनके भागवतका गान सुनकर मुग्ध हो गयी। राजा प्रतापरुद्रका हृदय प्रेमसे द्रवित हो गया । कथा संमाप्त होनेपर राजाने पुनः प्रणाम करके कहा—'प्रभो ! मैं आज आपकी शरण हूँ, मुझपर दया कीजिये और अपना शिष्य खीकार कीजिये।' तदनन्तर चन्दार्क नामक स्थानमें उनके छिये एक कुटिया बना दी गयी।

जगनाथदासजी हरिगुण गाते-गाते चले गये । इधर राजाने उन दुष्ट-वृद्धि साधु-निन्दक दुष्टोंको बुलाकर उन्हें यथोचित दण्ड दिया ।

महान् भक्त जगन्नाघदासको नखर शरीर त्यागकर प्रभुकी परम सेवामें पधारे आज चार सौ वर्षसे ऊपर हो गये, परन्तु आज भी श्रीजगन्नाघपुरीमें समुद्र-तीरपर श्रीहरिदास ठाकुरकी समाधिके समीप ही उनका समाधि-मन्दिर विद्यमान है । आज भी उनके द्वारा रचित उड़िया भागवत-प्रन्थ उड़ीसानिवासियोंके घर-घरमें देवता-की भाँति पूजित हो रहा है। लोग गुरु-मन्त्रकी माँति उसका खाध्याय करते हैं, पढ़ते हैं और परम भक्तिभावसे उसकी व्याख्या की जाती हैं।

वोलो मक्त और उनके भगवान्की जय !



श्रीहरिभक्त हिम्सतदास

-C-0/2012-

गवान् श्रीकृष्णके प्रति अटल अनुरागका उत्पन्न भ होना ही इस जीवनका प्रधान लंदेन्य हैं । इस उद्देश्यकी पृति पूर्वसिंगत सुकृत और भगवत-कृपापर ही निर्भर हैं । भगवत-कृपा टस्त

समय होती है जब मनुष्य निष्काम-भक्तिहारा उपासना करना है। निष्काम-भक्ति उत्पन्न होनेके छिये भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनके प्रति श्रीगीतामें यह उपदेश दिया है—

> यत्करोपि यद्श्रासि यज्ञुहोपि द्वासि यत्। यत्तपद्यसि कीन्तेय तत्कुरुप्य मद्र्पणस्॥

इसी सर्वेख अर्पणको अपना छक्ष्य वनाकर प्रत्येक जीव भगवच्छरणका अधिकारी हो सकता है । अस्तु । प्राचीन कालमें मनुष्य दीर्घायु होते थे और यज्ञानुष्टान, तपश्चर्या आदिसे भगवान्को प्रसन्न करनेमें सफल होते थे, परन्तु इस कलियुगमें वहां भक्तवत्सल भगवान् केवल प्रेमसे प्रकट हो अपने भक्तोंको दर्शन देकर कृतार्थ करते हैं। इस प्रेमकी सची उपासिकाएँ केवल गोपिकाएँ हो थीं, जिन्होंने 'प्रेम-मिक्त' उपासनाद्वारा जगहुरु भगवान् श्रीकृष्णको वहामें कर नित्य दिव्यरसोंका आखादन किया। इनके पथात् इसी मार्गके अनुसरण करनेवाले भक्त-दिरोमणि स्रदास, तुल्सीदास, नरसी मेहता, साधु तुकाराम इत्यादि हुए हैं। इन सबके चारु चित्रोंका 'भक्तमाल' में भली-भाँति वर्णन है। आधुनिक हिर्मक्तोंमें इसी श्रेणीके एक महात्मा हिम्मतदासजां ब्राह्मणकुलमें १९ वी हाताब्दीमें पन्नाराज्यके अन्तर्गत बरायछ नामक ग्राममें हुए हैं जो पन्नासे लगभग पाँच कोस है।

हिम्मतदासर्जाकं पूर्वजोंकी भगवत्-भक्तिमें विशेष रुचि थी और उनका समय नित्य साधु-संग, कथा-पुराण. हरि-चर्चा आदिमें न्यतीत होता था। इसी कारण इनको भी युवा होनेके पूर्व ही लाधु-सेवा और हरि-कीर्तनका अच्छा अवसर प्राप्त होता रहा, जिससे इनके हृदयमें वचपनसे ही प्रेमांकुर जम गया और दिन-दिन हरिचर्चा श्रवण करते-करते वही अंकुर बढ़कर एक सुदृद्द, विशाल प्रेमवृक्षके रूपमें परिणत हो गया! युवा-अवस्थामें इनका दिवाह किया गया । इन्हिपासे पत्नी . सुर्वाला और पनिपरायणा मिर्छा । इनके 'दयाराम' नामक एक पुत्र हुआ । ये दयारामजी श्रीमङ्गगवनके अच्छे हाना हुए ।

हिन्मतदासजीको मगदत्नगुग-कार्ननसे विशेष प्रेम या । हु आप झाँझे बजाकर मगदद्गुणानुशद करते-करने विषय हो जाया करते थे । एक बार इनकी इच्छा पक्षाके श्रीतुगठिकशोर मगदान्के (पन्नामें अद्यापि वर्तमान हैं) दर्शन करनेकी हो । इस्टिये उन्होंने उसी समय मानसिक प्रण कर लिया कि मैं प्रनिदिन श्रीतुगठिकशोर-जीके दर्शन किया कर्लेंगा । हिन्मतदासजी इस प्रणके पाठनार्थ नित्य झाँझें बजाकर भगवड़ जन करते हुए पैदछ ही दस मील पन्नानक जाकर भगवान्के दर्शन करने छो ।

एक दिन झाँझें बजाने हुए आप पत्ता जा गहे थे कि मार्गनें चार चोर मिले । उनमेंसे एकने वाद्याजांके सम्मुख्य आकर कहा कि 'बावाजी! क्यों चिल्ला रहे हो ! हम लोग चीर है, जो उस आपके पास हो यहीं रख दो ।' बावाजी उसकी वानें सुनी- अनसुनी करके पूर्ववत् कीर्तन करने हुए आगे बहने लो । तब उस चौरने इनकी झाँझें छीन ली और वह पूछने लगा कि 'जी कुछ लिये हो सब अभी बतलाओ।' बावाजीको दर्शनकी चटपटी पहीं थी, इबर यह झंझट सामने आ गया, देचारे मन-ही-मन अपने इछदेव श्रीसुगलिकशोरजीका ध्यानकर कहने लगे—'प्रभी! आज इस दाससे क्या अपराध बन पड़ा जो मार्गनें ही यह विष्न उनसित

हो गया ।' फिर कुछ सोचकर आप चोरोंसे बोले, 'माइयो ! मेरे पास तो इन झाँझोंके सिवा और कुछ भी नहीं हैं। वे तो तुमने छीन ही छी हैं, मैं तो श्रीजीके दर्शनार्थ नित्य यही झाँझें बजाता हुआ जाता हूँ।' चोरोंने भी समझ लिया कि यह कोई साधु है, मालदार आसामी नहीं। अतएव वे छोग झाँझ लेकर चल दिये। बावाजीको झाँझोंके टिन जानेसे वड़ा दुःख हुआ। ये विचार करने छगे, विना झाँझोंके श्रीहरि-कीर्तन कैसे हो सकेगा! आज अधिक विलम्ब भी हो गया है। न जाने भगवान्के दर्शन हो सकेंगे या नहीं? परन्तु अब करते ही क्या? चुपचाप ख़ाली, हाथ ही प्रमुका ध्यान करते हुए आगे वढ़े।

कुछ ही आगे बढ़े होंगे कि भगवत्-इच्छासे वे चारों चोर अन्धे हो गये और वावाजीको जोर-जोरसे पुकारकर कहने छगे, 'बावाजी! ओ वावाजी!! हमलोग अन्धे हो गये हैं। हमारी आँखें अच्छी किये जाओ। ये अपनी झाँझें लिये जाओ।' वावाजीने जब पुकार सुनी तब झाँझें मिलनेकी प्रसन्ततासे तुरन्त ही लौट पड़े! चोरोंने ज्यों ही इनका पद-शब्द सुना त्यों ही वे चारों उनके चरणों-पर गिरकर विनयपूर्वक कहने छगे, 'महाराज! हमलोगोंसे बड़ा अपराध हुआ, क्षमा कीजिये। हमने आपको पहचाना नहीं था।' बावाजीको इस आकस्मिक घटनापर अत्यन्त आश्चर्य हुआ। आप दयासे द्वित होकर कह उठे—

> चोरीसे मुख मोड़ियो, चोरनको नँदलाल। हमरी बस्तु दिवायके, चोरन करो निहाल॥

कहते हैं, इतना कहते ही चोर्राक्षा आँग्नें पुनः ज्यों-की-त्यों हो गया । उन लोगोंने झाँझें बाबार्जाको लीटा दी और उन्हींको गुरु-खरूप मानकर चोरी-बटमारी सदाके लिये त्यागकर, भगवत्-सेवा-पूजामें जीवन व्यतीत करनेका संकल्प कर लिया ।

देर हो गयी थी इससे बाबाजी अति शांत्रतासे आगे वहे, परन्तु आप पत्ना उस समय पहुँचे जब श्रीयुगलिकशोरजांकों सन्ध्या-आरती, ज्यारी, शयन इत्यादि सब हो चुका था । जब आप मन्दिरमें प्रवेश करने लगे तब वहाँके चौकांदारोंने कहा, 'बाबाजां! अब तो पट बन्द हो गये हैं। इस समय आपको दर्शन नहीं हो सकते।' तब बाबाजीने श्रीजीका घ्यान करने यह साखी कहीं—

कपटिनकों लागे गहें, हिम्मतदास कपाट। प्रेमिनके पग धरत ही, खुलत कपाट भत्पाट॥

इतना कहते ही मन्दिरके पट अपने-आप ख़ुल गये। उस समय इनको श्रीजीके प्रत्यक्ष दर्शन हुए। उसी समय आपने प्रेममें विह्नल होकर यह स्तुति की—

छागे रहीं निस्ति वासर नामसों, छाये रहीं छिपदेल विहारी। बैठे रहीं द्रवार ग्रुपालके, नीके छगें गुन ज्ञान उचारी॥ तीनहू लोकके नायक ही प्रभु, रामलला बेदेहि दुलारी। 'हिम्मतदास' सदा उरमें, षसवीं करीं राधिका कुंजविहारी॥

इसके अतिरिक्त गीतगोविन्दके पद और अन्यान्य भजनोंसे आप श्रीजीकी स्तुति करते रहे । स्तुति करते-करते मङ्गला-आरती- का समय आ पहुँचा । इसी अवसरपर महन्त गोविन्द दीक्षितजी भी, जो उस मन्दिरके अधिकारी थे, मन्दिरमें पहुँचे । उन्होंने जब यह समाचार चौकीदारोंसे सुना, तब वे अत्यन्त आश्चर्यान्वित हुए और हिम्मतदासजीके समीप जाकर, उनके दर्शनकर दण्डवत्-प्रणाम किया ।

तदनन्तर आज्ञा छेकर वे मङ्गला-आरतीकी तैयारी करने छगे। प्रातःकाल हो रहा था, उसी समय पन्ना-नरेश भी नित्य-नियमानुसार भगवान्के दर्शनको पधारे। उन्होंने भी जब महात्मा-जीके प्रेमसे श्रीजीके मन्दिरके पट अपने-आप खुल जानेका हाल सुना, तब महात्माजीको साष्टांग प्रणामकर यह प्रार्थना की कि 'महाराज! आपको रोज-रोज वरायछग्राम आने-जानेमें बहुत कष्ट होता होगा, अतः आप यहीं निवास कीजिये। मैं आपके लिये एक ग्राम अर्पण करता हूँ। उसे स्वीकार कीजिये।'

महात्मा हिम्मतदासजीको भगवान् पूर्ण सचिदानन्द पुरुपोत्तमके दर्शन हो चुके ये, अब इन्हें किसी वस्तुकी चाह नहीं थी ! इसल्विये आप पन्ना-नरेशको प्रलोभनमें नहीं आये। मङ्गला-आरती हो चुकने-पर अपने ग्रामको लोट गये।

इनके आश्रमपर साधु-अतिथियोंका अच्छा सत्कार होता या, जिससे इनके पास द्रव्यका संकोच सदा ही बना रहता था । आप अपने ग्रामके परमेरवरी नामक वणिक्के यहाँसे निजके और कभी-कभी साधु-समाजकी सेवाके छिये सामान उधार मँगवा छिया करते ये और उसका हिसाव पीछे चुकता कर दिया जाता या। एक बार ऐसा हुआ कि कहींसे एक साधुओंकी जमात इनके आश्रमपर आ पहुँची। इन्हें अतिथियोंसे असाधारण प्रेम या ही, तुरन्त उनका भछीभाँति आदरसहित आसनादिका प्रवन्त्र कर दिया और मोजनादिके प्रवन्धके छिये वनियेके यहाँ पहुँचे। वनियेने उठकर वड़ी आवभगतसे इन्हें दृक्तानमें बेठाया और वह अपना हिसाब समझाने छगा। आप तो इस समय दृसरे ही कार्यसे आये थे। इन्होंने विनयेसे साधुओंक सत्कारके छिये सामान उधार माँगा। वनियेने कहा 'महाराज! आपपर मेर बहुत-से रुपये निकलते हैं। जबतक पिछला हिसाब चुकता न हो जायगा तबतक मैं और उधार नहीं दे सकता।' उसका यह कहना ठीक ही या।

वेचारे अपना-सा मुँह लिये घर चले आये और धर्मपरांसे सब समाचार कह सुनाया। लिके पास उस समय केवलमात्र नाक-की नय ही शेप रह गयी थी। उसने साधु-सेवाके निमित्त उस नयको ही गिरवी रखकर काम चलानेका आग्रह किया। महात्मा-जी उस समय बड़े असमंजसमें पड़े, सोचने लगे कि अच्छा हुआ, अब साधु-सेवामें कोई त्रुटि न रहेगी और इस बातका संकोच भी होता था कि केवल एक ही गहना उस साम्बीके पास था, उदाकी भी आज समाप्ति हो रही है। परन्तु किया क्या जाय ? साधु-सेवावतीको तन, मन, धनसे सेवा करनेकी ही छाछसा रहती है। इसिछ्ये विना अधिक सोच-विचारके आप उस नथको छेकर सीघे विनयेके पास पहुँचे और उसे नय देकर बोछे, 'भाई! तुम इसे गिरवी रखकर आजका काम चछाओ, तुम्हारा हिसाव पीछे कर दिया जायगा।' विनयेने नथ छेकर महात्माको सब सामग्री दे दी। वड़े आनन्दसे साधु-सेवा हुई। प्रसाद पाकर साधु भजनानन्दमें छग गये। प्रातःकाछ साधु अपनी राह चछे गये। अस्तु!

महात्माजी नित्य-नियमानुसार नदी-किनारे गये। उनकी स्रीका यह नियम था कि वह प्रातःकाल उठकर पहले श्रीजीकी चौका-टहल करती, पूजाके पात्र धोकर सब सामित्रयाँ एकत्रित करती और फिर गृह-कार्यमें लगती। तदनुसार वह अपने काममें लग रही थी। इधर श्रीजीने लीला रची। वे हिम्मतदासजीका रूप धारणकर उस बनियेके घर गये और उससे बोले, 'माई अपना रुपया लो और मेरी नथ मुझे दो।' बनियेने अपनी बही देखकर कहा, 'आपपर कलकी रकमसिहत पौने तीन सौ रुपये निकलते हैं, सो दे दीजिये और फिर हमारा और आपका आजतकका हिसाब चुकता हो जायगा।' रुपये दे दिये गये, नथ वाबाजीको मिल गयी। उसे लेकर आप

हिम्मतदासके घर पधारे और खांसे बोले, 'यह नय ले जाओ और पहन ले ! वह उस समय चांका दे रही थी । चौका देते हुए हो उसने कहा 'अभी-अभी तो आप धोती-लोटा लेकर नदी गये थे, इतनी देरमें ही यह नय कहाँसे ले आये ? हिम्मतदासरूप-धारी प्रभुने तुरन्त हो उत्तर दिया—'वाह ! हिम्मतदासको रुपयोंकी क्या कमी है ? यह नय लो और पहन लो ।' खीने अन्दरसे कहा, मैं श्रीठाकुरजीका चौका दे रही हूँ, चत्रुतरेपर रख दीजिये। भगवान्ने कहा, 'नहीं, सुवर्णका गहना पृथिवीपर रखना लिंकत नहीं है । आओ जल्दी पहन लो ।' खीने प्रार्थना की, 'मेरे हाथ तो गोवरमें सने हुए हैं अतः आप ही कृपाकर पहना दीजिये।' तब प्रभुने निज करकमलोंसे वह नय उस भाग्य-शालिनी बाह्मणपक्षीको पहना दी और आप वाहर आकर अन्तर्द्धीन हो गये।

इतनेमें ही बाबा हिम्मतदासजी भी म्हान करके घर छीटे । अपनी खीको नय पहने देखकर आप बोले, 'मद्रे! यह नय तुम्हें कहाँ से मिळी ?' खीने कहा, 'महाराज! क्यों हैंसी करते हो ? अभी-अभी आप ही तो पहनाकर गये थे। बुढ़ापेमें यह हैंसी अच्छी नहीं लगती।' बाबाजीको बड़ा आश्चर्य हुआ, उन्होंने फिर भी उससे कहा, 'मैंने तुम्हें यह नय कब पहनायी ?' खी बोळी, 'महाराज! अभी मैं अच्छी प्रकारसे हाथ भी नहीं घो

पायी हूँ। अपने ही हायों अभी नय पहनाकर आप बाहर गये थे।' अत्र बावाजी विना ही कोई प्रश्न किये उस विनयेके पास पहुँचे और उससे पूछा, 'हमारी नय तुमने किसके हाथ वेच डार्छी?' उसने कहा, 'आप कहते क्या हैं? अभी थोड़ी ही देर हुई आप ही तो नय छे गये थे। यह देखिये वही रक्खी है और यह आपका हिसात चुकता होनेके दस्तखत हैं।' वावाजीने बही देखकर आनन्दपुलकित तनसे गद्गदकण्ठ होकर कहा, 'भैया परमेश्वर! तू वड़ा भाग्यवान् है। तुझे आज लीलामय भगवान्के दर्शन हो गये। तेरा परमेश्वरदास नाम आज सचा हो गया।'

यह कहकर वावाजी घर छोट आये और खीसे वोछे, 'प्रिये! तुम्हें और उस विनयेको आज श्रीजीके दर्शन हो गये। मैंने न जाने कौन-सा अपराध किया था जो मुझे नहीं हुए।' इतना कहते-कहते वावाजीके नेत्रोंसे प्रेमाश्रुपात होने छगा और वे भगवान्के विरहमें व्याकुछ हो पृथिवीपर छोटने छगे। उस दिन उन्होंने कुछ भी नहीं खाया। दिनभर ध्यान-मग्न बैठे रहे। दूसरे दिन प्रातःकाछ होते ही उन्हें आकाशवाणी सुन पड़ी कि 'आजसे सातवें दिन तुम्हें चृन्दावनमें दर्शन होंगे।' इतना सुनना या कि महात्माजीमें अद्भुत स्कृति उत्पन्न हुई और आप तुरन्त उठकर अपनी झाँझें वजाते, कीर्तन करते, स्थामा-स्थामकी रट छगाते

बहाँसे चल पड़े । सातवें दिन वृन्दावनके समीप पहुँचे ही थे कि उधरसे वृन्दावन-विहारी श्रीकृष्ण महाराज भुवनमोहन नटवर-वेष धारण किये प्रकट हुए । दोनोंका साक्षात्कार हुआ । महात्माजीका शरीर पुलकायमान हो गया । प्रेमाश्रु प्रवाहित होने लगे । तन-मनकी सुध जाती रही । आप वेसुध होकर मुनिजन-दुर्लम प्रभु-पद-पंकजोंमें गिर पड़े । प्रभु-मिलनके सुख-वर्णनका सामर्थ्य श्रुद्र लेखनीमें कहाँ ?

मगवान्ने इन्हें उठाकर हृदयसे छगाया और इनके सिरपर निज करकमछ रख इनकी अछौकिक भक्तिकी सराहना करते हुए कहा—'तुमने सात दिन मार्गमें अन्नादिके विना अत्यन्त ही कष्ट उठाया होगा, चछो, आओ, इस कदम्बन्धक्षकी छाँहमें मोजन करें । फिर बृन्दावनके दर्शन हों।' प्रमुआज्ञा शिरोधार्य-कर इन्होंने थोड़ा-सा महाप्रसाद प्रहण किया । भगवान्के दर्शन-सुखसे इनकी पूर्ण तृप्ति पहछे ही हो चुकी थी। वाळ-भोग हो जानेपर भगवान् बोछे कि 'हम तुमसे फिर मिळेंगे। अब तुम आनन्दसे बृन्दावनके दर्शन करो।' ऐसा कहकर वहीं अन्तर्धान हो गये।

भगवान्के पुनर्दर्शनके लिये उत्सुक महात्माजी वृन्दावनकी कुर्द्धोमें विचरने लगे । अन्तमें ये जिधर देखते उधर ही इन्हें युगलम् ति श्रीश्यामा-स्याम दीखने लगे, तब इन्होंने कहा---- जुगलक्षप दरसें सबें, मरकट विपिन मयूर। 'हिम्मत' वज परसें बिना, जियत जगतमें क्रुर॥

दृसरे दिन आप मनोहर घाटोंका दर्शन करते हुए श्रीयमुना-जीके तटपर पहुँचे । वहाँ क्या देखते हैं कि श्रीजी महाराज नवछ हिंडोला झुल रहे हैं । आप तुरन्त ही समीप पहुँचकर श्रीजीको झुला झुलाने और गाने लगे—

> नवल कुञ्ज यमुना निकट, हीरन जटित हिंडीर। 'हिस्मतदास' भुलावहीं, भूलत जुगलकिशोर 🖁

इस प्रकार उस त्रैलोक्यमोहिनी मूर्तिका दर्शनकर वे आनन्द-मग्न हो रहे थे कि श्यामसुन्दर अकस्मात् अन्तर्धान हो गये। तव महात्माजी भगवान्के दर्शनकी ठालसासे मथुराजी होते हुए गोकुल पहुँचे। वहाँ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीने इन्हें ग्वाल-रूपसे दर्शन दिये। तदुपरान्त वावाजी व्रजके सभी पुण्य-स्थानोंका दर्शनकर, वारम्वार व्रजरज स्पर्शकर और सिरपर घर श्रीवृन्दावन-विहारीकी अनुपम स्टामें स्के हुए प्रफुलित हृदयसे घर छोटे।

इस प्रकार महात्माजीने अपनी समस्त आयु केवल भगवत्-भजन एवं हरि-कीर्तैनमें ही न्यतीत की ।

बोडो भक्तवरसङ भगवान्की जय !



ंभक्त वालीग्रामदास

(8)

💥🌿 🌿 गत्रान्के भक्तोंमें कोई ऊँचा-नीचा नहीं। वहाँ तो 🛱 🎉 केवल प्रेमकी ही पृंछ है। जिसने अपना तन-मन-🎞 🏗 धन प्रभुके श्राचरणोंमें अर्पणकर अपने जीवनको प्रेममय बना डाला, वही भगवान्का परम प्रिय भक्त हो गया। वालीग्रामदास भी इसी प्रकारके भगवानके एक अनन्य भक्त थे। श्रीजगन्नाथपुरीसे दो कोसपर बालीग्राम नामक एक छोटा-सा कसवा है । बालीग्रामदासका जन्म इसी गाँवमें हुआ था । उनका जन्म-नाम 'दासिया वावरी' था । यह जातिके भीछ और उनका पेशा कपड़े बुननेका था। घरकी स्थिति बहुत ही खराव थी. उनके कोई सन्तान नहीं थी । संसारमें उनके आत्मीय-खजनोंमें एक पतित्रता पत्नी ही थी। स्त्री-पुरुप कपड़े बुनकर वड़ी ही गरीबीके साथ अपना पेट पाछते थे। उनके आचार-विचार तो अपनी जातिके अनुकूल ही थे, परन्तु भगवद्भजनमें उन्हें बहुत ही रस मिळता था। गाँवमें कहीं भी किसी उत्सवपर भजन-कीर्तन होता तो वह वहाँ जरूर पहुँ चते । यद्यपि उनको कीर्तनके भावों और अर्थोंका कोई ज्ञान नहीं या परन्तु कीर्तन सुननेमें उन्हें वड़ा ही आनन्द मिलता और वह गद्गद होकर आँसू वहाने लगते। इसी-

लिये जहाँ कहीं कीर्तन होता वहीं वह सब कामोंको छोडकर टौडे जाते। लगातार वर्षोतक भगवनाम-कार्तन सुनते-सुनते दासियाके मनका मैल मिट गया । उनकी भगवान्में रुचि उत्पन्न हो गयी और वह भगवत्कृपासे कुछ-कुछ भगवद्गावोंको भी समझने लगे। अब उन्होंने गुरु-मन्त्र छेकर भगवान्के भजन-पूजनमें और उनके पतितपावन कीर्तनके गाने-सननेमें समय लगाना शरू किया। भजनके प्रभावसे विवेक तत्पन्न हो गया और उनके निर्मल मनमें यह भाव आया कि 'संसारमें एक भगवानको छोड़कर और सभी क़छ मायाका खेल है। सोने और लोहेकी वेड़ीके समान पुण्य और पाप दोनों ही वाँधनेवाले हैं । अतएव इनसे मन हटाकर भगवान्में मन छगाना ही कल्याणका एकमात्र साधन है।' इस प्रकारके विचारोंसे उनके हृदयमें संसारसे वैराग्य हो गया। वह भगवत्य्रेमके नशेमें झुमते हुए फिरने छगे । समयपर मोजन करने और सोनेकी भी सुधि उन्हें नहीं रही । कभी कुछ खानेको मिल गया तो ठांक, नहीं तो न सही । जिस घोर चिन्ताके चितानलमें मनुप्य जीते-ही-जी निरन्तर जलते रहते हैं उस चिन्ताका मानों दासियाके हृदयमें अभाव ही हो गया। अवश्य ही एक चिन्ता उनके हृदयको सदा-सर्वदा व्याकुछ रक्खा करती थी । वह हमेशा यह विचार किया करते कि 'हाय ईखर, तने मुझे बड़ी नीच-जातिमें जन्म दिया है, में हरिभक्तिका नाम भी नहीं जानता । मुझ नीचको श्रीहरिके देववन्दित चरणकमलोंकी पहचान कैसे होगी ! हाय, क्या मेरा मनुष्य-जीवन व्यर्थ ही जायगा ?'

(२)

यह कहा जा चुका है कि वालीप्राम कसवा पुरीसे दो ही कोसपर था। वहाँके लोग सदा ही पुर्रा आया-जाया करते थे। पुरीमें प्रतिवर्ष भगवानुको रथयात्राका महोत्सव वहे ही धृम-धामसे होता है, उत्सवका आनन्द इटनेके छिये दृर-दृरसे टाखों मनुष्य आया करते हैं, परन्तु दासियाने अवतक भगवान्की रययात्राका दर्शन नहीं किया था। रथयात्राके दिन समीप थे, उनके गाँवसे होकर छोगोंके दल-के-दल श्रीजगन्नायजीका जय-घोप करते हुए दर्शनको जा रहे थे। उन्हें देखकर दासियाने अपने मनमें सोचा कि 'हाय, कितनी दूर-दूरसे भगवान्के दर्शनको लोग आते हैं, किन्तु मैं ऐसा अभागा हैं कि इतना नजदीक रहनेपर भी आजतक दर्शनसे विद्यत रहा ! क्या मेरे भाग्यमें पतितपावन अधम-उद्धारक अनायोंके नाथ श्रीजगनायके दर्शन लिखे ही नहीं हैं ! नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। दयामय भगवान् मेरेलिये ही ऐसा क्यों करने छो। यह मेरी ही नीचता है जो अवतक में दर्शनको नहीं गया। पर अव तो दर्शन किये विना दूसरा काम ही नहीं करूँगा ।' यों सोचकर वह अन्यान्य यात्रियोंके साथ जगनायजीकी ओर चळ पड़े।

वहाँ जाकर उन्होंने देखा कि श्रीजगनायजीका नन्दीघोप नामक रय गुँढिचेकी ओर जा रहा है। ठाखों नर-नारी दर्शनके लिये इकट्ठे हो रहे हैं। समीके मुखसे श्रीहरिनामकी जय-प्वनि हो रही है, हजारों मनुष्य नाच रहे हैं, हजारों गा रहे हैं, हजारों माँति-माँतिके वाजे बजा रहे हैं और हजारों ही मगवान्के रमके मोटे-मोटे रस्सोंको प्रेमसे खींच रहे हैं। इस हरि-प्रेमके आनन्द-हरयको देखकर दासियाका मन आनन्द-सिन्धुमें डूब गया। उन्होंने भी दोनों हाथ उठाकर प्रणाम किया और प्रेम-विह्नल नेत्रोंसे भगवान्के दर्शनकर 'जय जय श्रीजगन्नाय' की व्यनि की। तदनन्तर वह भगवान्के ध्यानमें निमग्न हो गये। ध्यानकी गाढ़ स्थितिमें उन्होंने देखा कि शक्क, चक्क, गदा और प्रमसे विम्षित, नीलकान्तमणि-सहश सुन्दर भगवान् श्रीहरि मधुर मुसकानके साथ उनकी ओर करुण-हिंधसे देख रहे हैं और मानों उन्हें प्रेम-दान दे रहे हैं!

अव दासियासे नहीं रहा गया, उन्होंने दोनों हाय उठाकर प्रमुकी ओर ताकते हुए गद्गदकण्ठसे कहा—'हे पिततपावन! हे मेरे प्रभो!! आपने जब दया करके मुझे अपने देव-दुर्लभ दर्शन दे दिये तो अब मैं पितत नहीं रहा। हे प्रभो! क्या आप पिततपावनको इन नेत्रोंसे देखकर भी कोई पितत रह सकता है? यदि अब भी मैं पितत ही हूँ, तो हे नाथ! सबसे पहले मेरा उद्धार करके आपको अपने पिततपावन नामकी सार्थकता करनी होगी। प्रभो! प्रभो!! मुझ-सरीखे पामर महापापीके भाग्यमें आपके दर्शन कहाँ दियामय यह तो आपकी दया ही है कि जिसके प्रतापसे मैं आपकी दयाका पात्र वन सका हूँ। मुझे

निराश न करो मेरे नाथ ! अत्र ता इस अधमका उद्घार करना ही पड़ेगा । प्रमां ! मुझे अपना छो । मेरे सारे पाप-ताप सदाके छिये दूर कर दो । मेरे हृदयमें ज्ञानका दिव्य दीपक जला दो और ऐसे अलैकिक आलोकसे मेरे सारे अन्तर और वाहरको प्रकाशित कर दो कि जिसके प्रकाशसे में आपकी त्रिमुवन-प्रकाशक परम कमनीय मधुर रूप-छटाका सदा-सर्वदा दर्शन पाया करूँ । नाय, क्या कहूँ, अत्र तो आपको मुझे अपनाना ही होगा । अपने नामको, विरदको सफल करना ही पड़ेगा ।

एक दिन प्रेमविह्नल हठीले भक्त सूरदासने भी प्यारे स्यामसुन्दरसे हठ करके गाया था—

आजु हों एक-एक करि टरिहों।
के हमहों के तुमही माघव! अपुन भरोसे लरिहों॥
हों तो पतित सान पीढ़िनकों पतिते हैं निस्तरिहों।
अपहों उघरि नचन चाहत हों तुम्हें विरद विनु करिहों॥
कत अपनी परतीति नसावत में पायों हरि हीरा।
सूर पतित तबही लें उठिहै जप हैंसि देहों वीरा॥

दासियाको मानों भगवान्ने हैंसते हुए 'तथास्तु' कहा । यह दण्डकी ज्यों ज्मीनपर गिरकर धरतीमें छोट-छोटकर वारम्वार प्रणाम करने छगे और अतृप्त नेत्रोंसे भगवान्की अप्राकृत सोन्दर्य-सुधाका पान करने छगे। तदनन्तर भगवान्की आज्ञा और आधासनपुक्त यवन प्राप्तकर उनकी अनुमति टे वह वहाँसे अपने गौँकर्का ओर चल परें।

(३)

दासिया तर पहुँचे । पितनता स्तीने म्हामीको आया देख हैसते हुए कहा-'अहा, आप स्पयात्राके दर्शन कर आये. बहुत ही अन्ता हुआ । भूल छग रही होगी, रसोई तैयार है, हाय-पग भीकर पहले भीजन कर लीजिये।' दासिया जिना ही कुछ नंहि पागलको तरह हाथ-पैर धोकर जानेको बैठ गये । पर बह तो दरारे ही भाषींने मस्त थे. भगवानेमने तहान थे. उनपर एक ऐसा सान्विक नदा हा रहा या जो बहे-बड़े विद्वान-तार्किकांका सप्तमें भी नसीव नहीं होता । आज दासियाकी सीने एक नयां हैं दियामें मान बनाय थे । उप्तान आनेसे भातके झाग · बाहर होर्निपर निपन्न गये थे । भातपर तरकारी रखकर खीने वहाँ हांदी दासियाके सामने रख दो । दासियाको बाणज्ञान नहीं या. अनः उन्हें नर्वारीके बदले होंगीने कुछ द्सरी ही चीज द्वांग पूर्व । काल हुँ शियामें सरेड भानोंपर काले शाकको इन्होंने अपने प्रमुक्ता औरव समझा और वह मन-हां-मन विचार करने लो कि 'शहा ! यह नो उसी विभनियन्ताका वहीं खेत पद्मसदश नेत्र है । अहा ! यह उस नेत्रका लाल अंदा है, उसके अन्दर यह सनेदां है और अहा ! इस सपे दामें प्रमुक्ता काली-काली पुतली दौसी शांनित हो रही है। भिना-भावके प्रवट आवेगसे दासिया-

का शरीर रोमाखित हो उठा, उनकी वाणी रुक गयी और सहसा नेत्रोंके वाँघको तोडकर प्रेम-नदोको धारा प्रवल वेगसे वहने लगी । वह इस स्थितिमें न जाने कितनी देर अचल वैठे रहे । इसके वाद एक पगछेकी तरह ज्याक्छिचत्तसे एकदम उठकर खड़े हो गये और मन-हीं-मन न जाने क्या बड़बड़ाने छगे । वह कभी हँसते, कभी रोते, कभी 'हा नाय !' 'हा नाय !' पुकार उठते और कमो सहसा आवेशमें आकर तालियाँ वर्जा-बजाकर नाचने लगते । उनकी ऐसी स्थिति देखकर वेचारी खीको बडा हो भय हुआ, उसने मन-ही-मन सोचा कि हो-न-हो पतिको या तो रास्त्रेमें कोई भूत लग गया है या किसीने जार कर दिया है। वह व्याक्तिल हो उठी और एकदम घरसे बाहर निकलकर अड़ोस-पड़ोसके लोगोंको पुकारकर कहने लगी—'अरे ! देखो तो मेरे पतिको क्या हो गया ? वह श्रीजगन्तायजी गये थे, रास्तेमें न माछम क्या हुआ कि वे एकदम पगछे हो गये हैं और जो मनमें आ रहा है वही वक रहे हैं। अरे, मेरा नसीव फट गया! मैं अब क्या करहें !

माग्यवती ! तेरा नसीव नहीं फ्टा । वह तो चमक उठा है और ऐसा चमका है कि जिसके लिये देवाङ्गनाएँ भी तरसती रहती हैं । जिनको देवदुर्लम सीभाग्य प्राप्त होता है उन्हींका यों नसीव खुळा करता है । अहा ! तेरा सामी आज उस ऋषि-मुनि-वन्दित देवदेव जगन्नायकी प्रेम-माधुरीमें उन्मत्त है कि जिसका

अन्तकालमें नाम भी वड़े पुण्योंके सिक्षित होनेपर मनुष्यके मुँहसे निकलता है!

जनम जनम मुनि जतन कराहीं। अन्त राम कहि आवत नाहीं॥

अस्तु, स्नीकी वात सुनकर लोगोंने उसे धीरज दिया और दासियाके पास जाकर कुछ लोग कहने लगे कि रि दासिया, तू यह क्या कर रहा है ? भोजन सामने रक्खा है और तू नाच रहा है, पागल तो नहीं हो गया ?' लोगोंने चारों ओरसे जब बार-वार इस तरह कहा, तव उनको कुछ बाह्यज्ञान हुआ। पागलपन कुछ उतरा समझकर लोगोंने कुछ अधिक पूछना शुरू किया, तब उन्होंने एक दीन-हीन कङ्गालकी माँति दोनों हाथ जोड़कर रोते-रोते सबको सम्बोधन करते हुए कहा-- 'भाइयो, अरे तुम यह क्या कह रहे हो ? ज्रा सोचो तो सही, मुझे क्या चीज खानेके लिये कह रहे हो, क्या रथपर विराजित भगवान् श्रीजगनायजीका यह पद्मनेत्र तुम लोगोंको नहीं दीखता ? अहा ! देखो, देखो, भगवान्की यह रतनारी आँख, यह उसके अन्दरका सफेद भाग और यह उसमेंकी काली-काली सुन्दर पुतली । अहा ! कैसी सुन्दर है! कैसी मनोहर है! इस प्रकार बोलते-बोलते बहु भक्तिके आवेशसे विवश होकर फिर उन्मतकी भाँति नाचने-गाने लगे।

दासियाके घरके पास बहुत छोग इकट्टे हो गये थे और उनमें अब्छे-बुरे समी प्रकारके मनुष्य थे। रथयात्राके कारण

वहत-से रसज्ञ, भावुका, सन्त-महात्मा भी पुरी जाते हुए वहाँ ठहर गये थे । वे छोग दासियाकी इस भक्तिविद्धल पंवित्र स्थितिको देखकर सुग्व हो गये और कहने छगे—'भाई! तरे निर्मेछ प्रम-भावकी विल्हारी ! ऐसा ऊँचा प्रेम तुझे कहाँसे प्राप्त हुआ ? -सचमच त श्रीहरिके मनको हरण कर लाया है । भाई, त धन्य है । धन्य है !! आज तुझे देखकर हमलोगोंको वड़ा ही आनन्द हुआ है । आजसे हम तेरा नाम 'बार्छाग्रामदास' रखते हैं । तेरे जन्मसे यह गाँव कृतार्थ हो गया । हे माता दास-पर्ना ! तुम अपने पतिके लिये कोई चिन्ता न करो, तम सचमच बङ्भागिनी हो जो तुम्हें ऐसा भक्त पति प्राप्त हुआ है ! तुम एक काम करो, हाँड्रीमेंसे भात और तरकारीको निकालकर किसी दूसरे वरतनमें अलग-अलग परोस दो, तब तुम्हारे पति भोजन कर लेंगे। अहा ! जिसके मनमें प्रमुक्त तेज्ञस्वी नेत्रने अपना स्थान कर लिया है वह क्या इस तरह भोजन कर सकता है ? माता. इस छाछ हाँडीके ऊपर झाग. अन्दर भात और उसके वीचमें रक्खी तरकारी क्या तुम नहीं देखती । तुम्हारे खामीको यह साक्षात् श्रीहरिके पद्मनेत्रके समान दीखता है. इसीसे यह इसे नहीं खाते !

इतना कहकर साधु वहाँसे चल दिये । सीने उनके कथनानुसार भात और तरकारीको निकालकर अलग-अलग वरतनोंमें परोस दिया और भोजन करनेके लिये पतिसे प्रार्थना की । वालीग्रामदासका भाव बदला और वह मोजन करने लगे।

(8)

परन्तु अव यह दासिया दूसरे ही दासिया हो गये! मामूळी दाससे वदलकर त्रिभुवनपतिके दास वन गये, उनके विचारोंमें अद्भुत परिवर्तन हो गया। आजकल वे चौवीसों घण्टे भगवान्के ध्यानमें लीन रहते हैं। वाहरसे कुछ भी काम करते हैं, परन्तु उनके अन्दर तो एक ही ध्यान, एक ही चिन्तन चाछ रहता है। वे जब सोते हैं तो श्रीप्रभुके अभय चरणकमलोंपर मस्तक टेककर सोते हैं, आँखें मूँदकर ध्यानमें उन्हींको देखते-देखते निद्रावश हो जाते हैं और जागते समय भी, वही छवीली छटा सामने रहती है। वे ध्यानमें ही सोते और ध्यानमें ही जागते हैं।

एक दिन रातके समय वे सो रहे थे, उनका चित्त भक्त-चिन्ता-मणिके चरणकमलोंका चन्नर्शक वन रहा था, उसी समय वह घवड़ा-कर पुकार उटे—'हा ! क्या शंखचक्रधारी भगवान मुझपर कृपा नहीं करेंगे ! क्या मुझको उनके साक्षात् दर्शन नहीं होंगे ! इसी विचारसे उनके हृदयमें एक भयानक आग-सी लग गयी, वे अस्थिर हो उठे । चित्तमें भगवान्के दर्शनकी तीव और अत्यन्त उत्कट उत्कण्ठा उत्पन्न हो उठी ! अब क्षणभरका भी विलम्ब सहन नहीं हो सका । चित्त अस्तव्यस्त हो गया, ऐसी अवस्था हुई कि जिसका वर्णन वाणीसे तो हो ही नहीं सकता, किन्तु कल्पनामें भी नहीं आ सकता । समझने-समझानेके लिये दिग्दर्शन-मात्रको जलसे विछुड़ी हुई मछलीकी दशाकी कल्पनाकर अनुमान ì

लगाया जा सकता है । वाखवमें तो इस स्थितिको वही जानता है कि जिसके चित्तको सारी चृत्तियाँ सब ओरसे सम्पूर्णभावन निस्मटकर सागराभिमुखी गंगाकी धाराकी भाँनि अभिसारिका वनकर प्रवल वेगसे अपने प्रियतमको ओर प्रवाहित होती है । चड़ी भारी प्यास लगनेपर एक जलके सिवा ओर कुछ भी नहीं सूकता, परनतु परमात्माके दिन्य दर्शनको उत्कण्ठा उत्पन्न होनेपर भाग्यवान् मनुष्यका हृदय, उस पिपासुकी न्याकुल पिपासासे भी कितना अनन्त अधिक गुण तृपित हो उठता है इसको वही जानता है; और जानते हैं उसके परम प्यारे भगवान् जो भक्त-हृदयकी सची न्याकुलताको पहचानकर तुरन्त ही प्रकट होकर उसे कृतार्थ कर देते हैं ! भक्तिमती मीराने न्याकुल होकर गाया धा—

मैं तो राम दीवानी मेरो द्रद् न जाणे कीय।

× × × ×

घायळकी गति घायळ जाणे जो कोई घायळ होय॥

× × × × ×

मोराकी प्रभु पीर मिटें जय वेंद साँवळिया होय॥

जिस शुभ क्षणमें भक्तका प्रेमिवहरू हृदय व्याङ्गरूताके मृक खरोंमें इस प्रकार पुकार उठता है, उसी क्षण भगवान उसके समीप उपस्थित हो जाते हैं। वे वहाँ न जाति-पाँति देखते हैं, न विद्या-बुद्धि देखते हैं और न कुळ-आचारकी हो परवा करते हैं। पुकार सुनते ही दौड़ते हैं और प्यारे भक्तको हृदयसे लगाकर

कृपाके आँसुओंकी धारासे इसका अभिषेक करते हैं। आज दासियाकी प्रेम-पुकार सुनकर भगवान् उनके समीप आ पहुँचे । दासियाका आवेश उतरा, आँखें ख़ुल गयीं और उन्होंने चिकत. मुग्ध नेत्रोंसे अपने जीवनधन मनमोहन श्रीहरिको मन्द-मन्द मस्कराते सामने खड़े देखा । नेत्रोंद्वारा प्रभुके रूपामृतका पानंकर उन्होंने अपने अनेक युगोंकी पिपासाकों शान्त किया। पता नहीं, कितने समयतक मन्त्रमुग्धकी भाँति वह भगवान्की दर्शन-मदिरामें छके रहे। फिर दोनों हाथ जोड़कर प्रेमाश्रुओंकी धारा बहाते हुए बोले--'दयामय ! उस दिन रथयात्राके समय ध्यानमें आपने जिस दिव्य मूर्तिसे दर्शन दिये थे, आज उसी तेजपुञ्ज अल्लोकिक मूर्तिमें आप मेरे सामने साक्षात् उपस्थित हैं। सचमुच आप वड़े दयाछ हैं। प्रभो ! आप निराधारके आधार हैं, अहो ! सुर-असुर, गन्धर्व-िकन्नर, योगीन्द्र-सुनीन्द्र आदि भी जिनके दर्शनको सदा तरसते रहते हैं वही प्रभु आज मुझ-सरीखे दीन-होन, ज्ञानभक्तिविहोन कंगालके घर पघारे हैं । अहा ! मैं प्रमुका कैसे सत्कार करूँ ?"

प्यारे भक्तकी वात सुनकर दयामय प्रमुने मुस्कराते हुए मधुर वाणींसे कहा—'मेरे प्यारे! नीच हो या ऊँच, जो मुझपर प्रेम रखता है वह मुझे वड़ा ही प्यारा है। जो छोग खर्ग-सुख या किसी दूसरे पदार्थके छिये मेरी भक्ति करते हैं या उतनेहींके छिये मेरे साथ प्रेम दिखछाते हैं, वे मेरे हृदयको कमी. पिघछा नहीं सकते, परन्तु जो निष्काम अनन्य प्रेमभावसे मेरा भजन करता है उसके लिये—उसके वियोगमें तो मैं खर्य झूर-झूरकर मरा करता हूँ। मैं तेरे विशुद्ध भावपर वड़ा ही प्रसन्न हूँ और तेरी उसी प्रेम-डोरीसे खिंचकर यहाँ आया हूँ। हे प्रियतम ! आज मैं तुझ-पर वहुत ही प्रसन्न हूँ, माँग ले, माँग ले दिल खोलकर मुझसे मनमाना वरदान !'

अहा ! समस्त ऐश्वर्यके आधार साक्षात् सिचदानन्दघन प्रमु जिसके सामने खड़े हैं उसको फिर दूसरी किस वस्तुकी आकांक्षा रह जाती है ! वालीग्रामदासने परम आनन्दसे प्रमुक्ते चरणोंमें आत्मसम्पण कर कहा—'मेरे नाथ, प्रमो ! आपके चरणकमलोंको सामने देखते-देखते ही मैं मर जाऊँ; वस, मुझे यही चाहिये ! हे प्रमो ! मैं आपसे और क्या माँगूँ ! पतितपावन ! इसपर भी यदि आपका मन न मानता हो तो मुझे यही शुभ आशीर्याद दीजिये कि मेरा मन-भ्रमर सदा-सर्वदा आपके पवित्र चरणकमलों-का मधुर मकरन्द ही पान करता रहे और जव-जव मैं आपका ध्यान करूँ तव-ही-तव आपके प्रत्यक्ष दर्शनका मुझे सौभाग्य प्राप्त हो । हे दीनदयालो ! मुझे और कुछ भी नहीं चाहिये ।'

भक्तकी प्रेमभरी प्रार्थना सुनकर भगवान् बहुत ही प्रसन्न हुए और मन्द-मन्द हँसते हुए कहने छगे—'कस ! तेरे जीवनको धन्य है, तुझ-जैसा निष्काम चित्तका मक्त बहुत ही दुर्छम है। तेरी सारी प्रार्थना पूर्ण होगी। एक वात और, जब द पुरी आवेगा तव मैं मन्दिरके नीलचकपर बैठ जाऊँगा और उस समय तुझको मेरे जैसे दर्शनकी इच्छा होगी, वैसे ही दर्शन होंगे। तब त् मुझे जो कुछ भी पदार्थ देगा, उसे मैं बड़े ही प्रेमसे खाऊँगा।'

इतना कहकर भगवान् अन्तर्धान हो गये। भगवान् तो प्रेमके भूखे हैं। बिना प्रेमके छप्पन भोग ठुकराकर भगवान् प्रेमसे अर्पित की हुई शाक-भाजी बड़े आनन्दसे भोग लगाते हैं। खयं ही आपने कहा है—

> पत्रं पुष्पं फलं तीयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति । तद्दं भक्त्युपदृतमश्चामि प्रयतात्मनः ॥ (गीता ६ । २६)

'मनुष्य यदि पत्र, पुष्प, फल या जल ही मेरेलिये प्रेमपूर्वक अर्पण करता है तो उस मेरे प्रेमका सम्पादन करनेवालेके द्वारा प्रेमपूर्वक दिया हुआ वह पदार्थ मैं खयं प्रकट होकर खा लेता हूँ।'

दीनता भक्तका सहज स्वमाव है, प्रमुक्ते परम भक्त अपनेको 'तृणादिपि सुनीच' ही मानते हैं। दासिया भी अपनी जातिको बहुत नीच मानते थे और इसी कारण इच्छा होनेपर भी उन्होंने भगवान्को कुछ खानेके छिये न कहकर केवल दर्शन देनेको ही प्रार्थना की थी, परन्तु अन्तर्यामी भगवान्से भक्तके हृदयकी इच्छा कैसे छिपी रह सकती है ? भगवान्ने इसीलिये बालीग्रामदाससे उपर्युक्त वातें कहीं। भगवान्की आज्ञा सुनकर बालीग्रामदास मनमें सोचने लगे। 'आहा! भगवान्की कितनी कृपा है, सचमुच

इतनी कृपाके कारण ही भक्त आपको कृपासागर कहा करते हैं। प्रमो ! घन्य है आपकी कृपाको और आपके स्वामीपनको !'

(4)

यों विचार करते-करते रात बीत गयी, सबेरा हुआ और वालीग्रामदास उठकर भगवानुके भोगके लिये विचार करने लगे। उन्होंने कुछ कपड़ा बुन रक्खा था, उसे वेचनेके छिये घरसे निकल पड़े और एक ब्राह्मणके दरवाजे जा पहुँचे । ब्राह्मण कपड़ा खरीदकर पैसे हेने घरके अन्दर गया । मक्त वाहर खड़े थे और भगवान्के प्रसादके छिये क्या छे जाना चाहिये. इसीपर विचार कर रहे थे। अकरमात उनकी नजर नारियलके पेड़की ओर गयी। उन्होंने देखा एक सुन्दर नारियल लगा हुआ है, उसीको भगवान-के छिये छे जानेका विचार किया और सोचने छंगे कि ब्राह्मण कृपा करके मझे यदि यह श्रीफल दे दें तो क्या ही अच्छा हो । यह इस पेड़का पहला ही फल है, इससे भगवानको वड़ी ही प्रसन्तता होगी । इतनेहीमें ब्राह्मणने आकर पैसा टेनेको कहा । पर पैसा न लेकर वालीग्रामदास वोले---'हे देव ! दया करके मझे यह नारियल दे दो और इसके जितने पैसे हों, कपड़ेकी कीमत-मेंसे काट हो।' ब्राह्मणने रुखाईसे जवाव दिया—'ऐसा नहीं हो सकता, यह पेड़का पहला ही फल है, नहीं दिया जा सकता।' ब्राह्मणने यह कह तो दिया, फिर उसके मनमें विचार आया कि नारियल देनेसे पैसे वच जायँगे। इधर वालीग्रामदास वहुत ही

आग्रह करने लगे । उनके आग्रह और पैसोंके लोभसे ब्राह्मणका मन बदला । उसने कहा-- 'तु जब इतना आग्रह करता है. तो मुमसे नाहीं नहीं की जा सकती । हैकिन त कितने पैसे देगा ?' दासने कहा कि 'महाराज! पैसे तो सारे आपके ही हाथमें हैं जितने चाहें, हे होजिये।' ब्राह्मणने सोचा कि दाँव तो अच्छा है. खुर कसके पैसे छेने चाहिये। तदनन्तर उसने कहा कि 'भाई, इस नारियळको देनेकी मेरी इच्छा तो विल्क्षल नहीं है। पर तेरे हठको देखकर बुद्ध-कुछ मन होता है। तुझे नारियल चाहिये तो हे हे, पर बद्हेमें कपड़ेकी कीमत कुछ भी नहीं मिटेगा ।' दासने आनन्दोञ्चासके साथ कहा--'अच्छी वात है. जल्दींसे नारियल तोड दो ।' ब्राह्मणने नारियल तोड़ दिया । बालीग्रामदास पासके ही तालावमें नहाकर शुद्ध हो नारियल टेकर चल दिये । उन्हें इस समय बड़ा आनन्द है । भगवलोममें मस्त भक्त इस बातको भुछ गये कि घरमें कुछ भी नहीं है और विना पैसे घर जानेपर खी-पुरुप दोनोंको भूखों मरना पड़ेगा ।

वालीप्रामदास रोज जितना कपड़ा बुनते, उतना बेंचकर उन्हों ऐसोंसे कुछ तो दूसरे दिनके छिये सूत खरीद छाते और जो कुछ वचता उससे फूखा-सूखा खाकर काम चलते। आज कपड़े-की कीमत बिल्वुल न मिलनेसे केवल एक दिन भूखों ही मरनेकी बात नहीं, किन्तु कलके लिये सूत भी छानेको पैसे नहीं रहे। प्रेममें तल्लीन होनेपर भविष्यका विचार कौन करे ? अस्तु, ब्राह्मण-से नारियल लेकर दासजी सीथे पुरीकी ओर चल पड़े। रास्तेमें उन्होंने पूजाकी सामग्री लिये एक ब्राह्मणको जाते देखा। उसे देखकर उन्हें बड़ा आनन्द हुआ और वे कहने छगे कि 'हे देव ! तनिक मेरी प्रार्थना तो सुनो, तुम भगवान्की पृजा करने जाते हो तो कृपाकर मेरा यह नारियल भी लेते जाओ । इसको भी भगवान्के अर्पण कर देना, इसमें तुमको कोई तकलीफ तो नहीं होगी ? शाह्मणने कहा-- 'भाई, तकलीफ कैसी ! इतनी सामग्री भगवानुको चढ़ायी जायगी, उसीके साथ यह नारियल भी चढ़ा दिया जायगा । लाओ, दो ।' ब्राह्मणके वचन सुनकर बालीप्रामदासने वडी सरलतासे कहा-'महाराज ! मेरा यह श्रीफल आप इन सामिश्रयोंके साय निवेदन न करना । इसको तो अपनी सारी सामप्रियोंक अर्पण कर देनेके वाद याद करना । परन्त यह श्रीफल भगवानके सामने केवल रख ही देनेको नहीं है, इसे लेकर गरुइन्तरभके पास खड़े हो भगवान्का स्मरण करके यह कहना कि 'हे प्रमो ! वालीग्रामदासने आपके लिये यह श्रीफल भेजा है इसे ग्रहण कीजिये। महाराज ! इतना कहकर तुम वहीं चुपचाप खड़े रहना, कुछ बोलना नहीं । तुम्हारी प्रार्थना सुनकर भगवान् यदि अपने हाथसे श्रीफल हे हें तो दे देना, नहीं तो मेरा वापस लौटा लाना । महाराज, मेरी इस विनतीको भूल न जाना ।'

वालीग्रामदासकी सरल और सची वातोंको सुनकर संसारी विद्वान् ब्राह्मण हँस पड़े और वोले—'अच्छा भाई, ऐसा ही होगा।' यों कहकर उन्होंने नारियल ले लिया। ब्राह्मण बहुत ही सुशील, शान्त और श्रद्धालु थे, इसलिये दासने उनका विश्वास करके उन्हें नारियल दे दिया और वह अपने घर लौट आये । ब्राह्मण प्रभुके मन्दिरमें पहुँचे । पोडश उपचारोंसे भगवान्की पूजा की । अपनी सारी सामित्रयाँ भगत्रान्के अर्पण की । तदनन्तर महा-प्रसाद लेकर कुछ देर विश्राम करनेके बाद जब घर छौटने छगे, तब उन्हें वालीग्रामदासका श्रीफल याद आया और उन्होंने मन्दिर-में जाकर गरुड़स्तम्भके पास खड़े हो नारियळ हाथमें लेकर भगवान्के सामने कहा—'हे प्रमो! आपके लिये वालीग्रामदासने यह श्रीफल भेजा है और कह दिया है कि यदि भगवान् स्वयं अपने हायसे श्रीफल छें तो देना, नहीं तो लौटा लाना। अन आप या तो कृपा करके इस फलको स्वीकार कीजिये, नहीं तो मैं ळीटा ले जाऊँगा ।' इतना कहकर त्राक्षण आँखें म्रॅंद भगवान्का ध्यान करने हमे । भक्तवत्सरु भगवान्ने हाथ बढ़ाया और ब्राह्मण-के हाथसे नारियल लेकर भोग लगाने लगे । इस अद्भुत घटनाको देखकर पण्डितजी तो स्तन्त्र हो गये। भगवान्के कर-स्पर्शसे उन्हें परम आनन्द हुआ, वे ध्यानमें तङ्घीन हो गये। उनके नेत्रोंसे आँसुओंकी धारा बहने लगी और वह मन-ही-मन बालीप्रामदास-का स्मरणकर कहने लगे—'अहा ! भक्त ! तेरे अटल विश्वासको धन्य है ! तुझको और तेरी जन्मदात्री बङ्भागिनी माताको भी धन्य है ! एवं तुझ-जैसे भक्तके आविर्भावसे वालीग्राम गाँव भी भ्रन्यबादका पात्र हो गया है । अहा ! पुरुपोत्तम भगवान् तुझपर पूर्ण प्रसन्न हें, आज तेरा यह प्रेमपूर्ण श्रीफल भगवान्को निवेदन- कर मैं भी धन्य हो गया हूँ । भक्त ! प्रभुके प्यारे भक्त ! तुझे धन्य है, धन्य है ॥'

इस वातकी चर्चा फैलते ही बहुत-से लोग वहाँ इकट्टे हो गये। सबको बड़ा आश्चर्य हुआ और सभी बालीग्रामदासकी और उसके ग्रेमकीप्रशंसा करने लगे। ब्राह्मण अपने वर लौट आये और श्रीमन्दिरकी सारी घटनाएँ बालीग्रामदासको उन्होंने सुना दी।

(&)

दासियाको आज बड़ा ही आनन्द है। आज उनके मनमें दह विश्वास हो गया कि अखिल ब्रह्माण्डके नाथ नीच मनुष्यकी भी परम भक्तिमावसे दी हुई प्रत्येक वस्तुको प्रहण करते हैं। अब उनका सारा संकोच जाता रहा। इस घटनासे उनके प्रेममें और भी चृद्धि हुई और अब वे खयं प्रसाद लेकर निःसङ्कोच प्रभुके पास जानेका विचार करने लगे। इतनेमें उन्हें नीलचकपर दर्शन देनेकी भगवान्की आज्ञाका स्मरण हो आया और वह जानेको तैयार हो गये, परन्तु खाली हाथ कैसे जायँ है इतनेहीमें एक माली आमका टोकरा लिये वेचने आया। वड़े सुन्दर आमोंको भगवान्के भोगके योग्य समझकर भक्तने मुँहमाँगे दाम देकर उन्हें खरीद लिया। आमोंको दो टोकरियोंमें रख उन्हें काँवरमें लटकाया और कन्धेपर रखकर भक्तराज वहाँसे चल दिये। भगवान्के मन्दिरके पास पहुँचनेपर उनको पण्डोंने घेर लिया। सुन्दर पके हुए आम देखकर पण्डोंके मुँहमें पानी भर आया। उनमेंसे एकने

कहा-- 'भैया ! आम मुझे दे दे, मैं भगवान्को भोग छगा हुँगा ।' दूसरेने कहा-जा, जा, तेरा क्या अधिकार है ! मोग तो मैं लगाऊँगा ।' इतनेमें तीसरा आकर पुकार उठा-"अरे, मेरे रहते किसकी ताकत है जो इन आमोंको भगवान्के भोग लगाये।' आमोंके छालची, भगवान्के ठेकेदार बने हुए पण्डे आपसमें लड़ने लगे। वालीग्रामदास उनका यह ढंग देखकर घवराये। पण्डोंने जब छीननेका विचार किया, तब भक्तने हाथ जोड़कर कहा-- भाइयो ! ये आम आपलोगोंमेंसे किसीको नहीं मिल सकते । ये तो मेरे प्रभु खायँगे ।' इतना कहकर भक्त अपने भगवानुका चिन्तन करने छगे। पण्डे कुछ शान्त हुए और किसीको भी आम न देते देखकर बालीग्रामदाससे बोले कि 'माई, जब भगवान्के लिये आम लाये हो, तब हमें क्यों नहीं देते ? यहाँ तो कोई कुछ भी छाता है तो पहले हमें ही देता है और फिर उसे हमीं लोग भगवान्के आगे रक्खा करते हैं। तुम हममेंसे किसी भी एकको ही दे दो । ज्यर्थ देर क्यों कर रहे हो ?' पण्डोंके वचन सुनकर भक्तने हँसते हुए कहा-- 'यह आम मैं किसीको नहीं दूँगा । इन्हें तो मैं अपने हाथोंसे भगवान्-को खिलाऊँगा । आपलोगोंको कोई दूसरा काम होगा । अतएव यहाँ से चले जाइये ।' इतना सुनते ही पण्डे आगनवूला हो गये और धमकाते हुए दाससे वोले- 'पगला कहींका ! आया है अपने हायसे भोग लगाने । भीतर धुस पावेगा तब न !' फिर

जरा नम्र होकर बोले-'भाई, भगवानुके लिये छाया है तो उनके सेवकोंको क्यों नहीं दे देता । हमलोगोंको दिये विना भगवान कैसे भोग लगावेंगे ? ला हमें दे दे ।' पण्डोंके वचन सनकर वालीप्रामदासको हँसी आ गयी और वह हाथ-पैर जोड़कर किसी तरह पण्डोंको राजीकर मन्दिरमें जा पहुँचे एवं भगवानके श्रीनीलचक्रके दर्शन किये । नीलचक्रके सामने जाते ही भक्तके हृदयमें प्रेम उमड़ उठा । उन्होंने देखा वास्तवमें भगवान नीलचक्र-पर निराज रहे हैं। वह हर्पत्रिमुग्ध होकर पुकार उठे—'अहा हा! वहीं तो हैं. वहीं मेरे खामी, वहीं कृपासागर नाथ, इस रंकपर क्रपाकर यहाँ आ विराजे हैं । प्रमो ! धन्य है आपकी दयाको !' वालीप्रामदास ज्यों-ज्यों तल्लीनतासे भगवानके दर्शन करने लगे त्यों-ही-त्यों भगवान्के भी माधुर्यका उत्तरोत्तर. अधिक-से-अधिक विकास होने लगा । मानों सौन्दर्यसागर आज मृर्तिमान् होकर नीलचकके ऊपर उमड़ आया। दास, प्रमुका प्यारा दास, नेत्रोंद्वारा भगवान्की सौन्दर्य-मदिराका पानकर उसकी मादकतासे मतवाळा वन गया । वारम्वार साणङ्ग प्रणामकर उन्होंने भगवान-की स्तुति की। तदनन्तर दोनों हार्थोमें एक-एक आम देकर भगवान्के सामने कर कहने छगे-- 'प्रभो ! खाओ, खाओ, खुव खाओ ! इस दासको कृतार्थ करो नाय !' देखते-ही-देखते दोनों टोकरियाँ खाली हो गयीं । पण्डोंने पहले समझा या कि यह आदमी पागल है, परन्तु अब आर्मोको अदृश्य होते देख उनके

आश्चर्यका पार नहीं रहा और उन्होंने समझा कि 'हो-न-हो यह कोई जादूगर है।' क्योंकि उन्हें भगवान्को आमका भोग लगाते देखनेका सौभाग्य नहीं प्राप्त हुआ ! वे सन्देहकर वालीग्रामदाससे पूछने लगे और वालीग्रामके यह कहनेपर कि 'आम भगवान्ने खाये हैं।' वे आपसमें कहने छगे कि 'यह सव तो वातें हैं। कभी भगवान भी यों आम खाते हैं ?' पर जब उन्होंने मन्दिरमें जाकर देखा कि रतवेदीके पास आमोंके छिलके और गुठलियोंका देर लगा है तब तो वे सभी अचरजमें हुव गये और बालीग्रामदासके समीप आकर उन्हें प्रभु-प्रसादकी माला पहना कहने लगे कि 'धन्य है आपके जीवनको ! आपने अपने विद्युद्ध प्रेमसे भगवान-को बरामें कर लिया है ! अरे. हम तो केवल नाममात्रके सेवक हैं. सचे सेवक तो आप हैं। आज आप-जैसे भक्तके दर्शनकर सचमुच हम कृतार्थ हो गये ! अहा ! शास्त्रकी यह वात आज सर्वथा सत्य हो गयी कि भगवान् अपने भक्तके अधीन हैं ! वे भक्तिके वहा हैं। भक्तिके नातेमें वे कोई भी ऊँच-नीचका खयाल नहीं करते ! भगवान् आपपर परम प्रसन्न हैं, इसीसे आपके फलें-का उन्होंने आनन्दपूर्वक भोग लगाया है। मनुष्य किसी भी बातमें कितना ही बढ़ा-चढ़ा क्यों न हो, परन्तु यदि वह भक्तिहीन है तो भगवान् उसको दी हुई सामग्रीको छूतेतक नहीं। आप धन्य हैं जो विश्वम्भर भगवान्को अपने हाथों आम खिला सके ।' बालीग्रामदासने हाथ जोड़कर नम्रतासे कहा- 'महाराज,

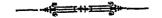
में तो अत्यन्त तुच्छ हूँ, नीच जातिका हूँ, मुझमें मिक्त कहाँ ? यह तो मक्तमावन पतितपावन भगवान्की और उनके भक्तोंकी क्या है। आपलोगोंको धन्य है जो सदा भगवानके चरणोंमें रहते हैं। इस प्रकार कहते हुए बाळीग्रामदास उनके चरणोंमें छोट गये और चरण-रजको अपने मस्तकपर छगाने छगे। वाछीप्रामदास प्रेम-विद्वल हो प्रकार-प्रकारकर रोने लगे और बोले-'हे प्रभो ! अब मैं यहाँ कभी नहीं आऊँगा। दयासागर! कहाँ तो मैं नीच-जातिका महापतित अधम गैँवार और कहाँ आप सिच्चा-नन्दघन विश्वाधार परमात्मा ! नाथ. आज आपने मुझे प्रकट कर दिया। छोग मुझे क्या कहेंगे? वे तो यही कहेंगे कि यह भगवान्का अनन्य भक्त है, तब मैं छजाके मारे अपना मुँह कहाँ छिपाऊँगा मेरे प्रभो ! कहीं छोगोंसे प्रशंसा सनकर यदि सुझे अहंकार हो गया तो मेरी क्या गति होगी ? लोक-परलोक अन्धकारमय हो जायेँगे । मैं अब क्या कहूँ ? यहाँ तो भविष्य कभी आनेका ही नहीं। मुझे यही आशीर्वाद दो कि जहाँ कहीं भी में आपको स्मरण करूँ वहीं मुझे आपके दर्शन प्राप्त हो ं जायँ । हाँ, महाराज ! एक इच्छा है और वह वहुत समयसे है । मैं प्रभुके दसों अवतारोंके अभी प्रत्यक्ष दर्शन करना चाहता हूँ।

भक्तके सच्चे हृदयकी ग्रुम अमिलाषा भगवान् कैसे अपूर्ण रख सकते हैं ! दयामयने दयाकर अपने दसों अवतारोंके दर्शन कराये और उन्हें आश्वासन तथा आशीर्वाद देकर विदा किया । हरि-गुण गाते हुए भक्त उस मन्दिरको छोड़, हृदय-मन्दिरमें भगवान्का प्यान करते हुए घर छोट आये ।

आज वीसवीं सदीके शिक्षाके अभिमानी और जड़ बुद्धिवाद-का आश्रय छेनेवाछे हमछोग भगवान्की इन छीछाओंपर अविश्वास-कर इन्हें कोरी कहानी कह वैठते हैं। यह हमारा दुर्भाग्य है। किन्तु भक्तोंकी दिष्टमें ऐसी वार्ते सर्वथा सत्य हैं और सत्य ही रहेंगी। अस्तु।

प्रतिष्ठाके भयसे डरकर वालीग्रामदास पुरी छोड़कर घर आये। पर यहाँ भी उनके पास आनेवालोंका ताँता लगा ही रहा। वालीग्रामदास अपनी प्रशंसा सुनकर लजासे धरतीमें गड़े जाते थे। अन्तमें उन्होंने घरसे वाहर निकलनातक छोड़ दिया और वे केवल प्रभुके चिन्तनमें लीन हो रहे। अब वे श्रीहरिका स्मरण करने और उनके सामने हँसने-खेलने और नाचने-गानेके आनन्दमें ही अपना जीवन विताने लगे। विश्वपतिकी प्रेरणासे उनके जीवन-निर्वाहके लिये कोई अभाव नहीं रहा। स्नी-पुरुष दोनोंका सारा जीवन भगवान्के प्रेममें परम आनन्दसे बीता और नश्वर शरीरको छोड़नेके वाद दोनों दिव्यधाममें जाकर सदाके लिये भगवान्के चरणकमलोंके सेवक वन गये।

बोलो मक्त और उनके भगवान्की जय !



भक्त दिचणी तुलसीदासजी

~E++===

🗲 क्षिणमें समुद्रके किनारे वसे हुए विजयापट्टण नामके नगरमें तुल्सीदास निवास करते थे। द 🎇 वह जातिके क्षत्रिय थे। वह जैसे देखनेगें युन्दर ये, वैसे ही उनका हृदय भी सुन्दर या। लनमें जारीरिक और मानसिक वल असाधारण था । साथ ही वह दाता भी वड़े भारी थे। प्राणदान करनेकी भी उनमें शक्ति थी। घडसवारीके लिये वह सारे प्रान्तमें प्रसिद्ध थे। उनकी उम्र भी अधिक न थी, परन्तु पूर्वजन्मके पुण्यके प्रभावसे योड़ी उम्रमें ही उन्हें विपयोंकी अपेक्षा भगवान्में अधिक प्रीति छम गयी थी। घरमें रूप-गुण-शीला युवती स्त्री, अत्यन्त सुन्दर छोटे-छोटे दो बालक और एक कन्या थी. अवस्था भी अच्छी थी: परन्त इतना सव होनेपर भी इनपर उनकी आसक्ति नहीं थी। कर्चन्य-पालनके भावसे ही उन्होंने संसारके साथ अपना सन्वन्ध वना रक्खा था। उनका मन सदा-सर्वदा भगवत्-कथामें, साधु-महात्माओंके सत्सङ्गमें और देव-दर्शनमें ही लगा रहता था । गाँवमें जहाँ कहीं भजन-कीर्तन या देव-महोत्सव होता, वहीं वह चले जाते और अपना

मक्त दक्षिणी तुर्वसिद्धासजी

सारा समय उसीमें ही बिता देते । स्वितः होसा सुनकार् करहे अपूर्व आनन्द होता या । इसके सिवा मगेकसे वार्क आवसे ही विपत्तिमें पड़े हुए छोगोंकी सहायता करना भी उनके जीवनका एक प्रधान कार्य था ।

त्रल्सीदास-जैसे सरल्हदय तथा शास्त्रमें अटल श्रद्धा रखने-वाले मनुष्य बहुत योड़े होते हैं। वह भगवान श्रीरामचन्द्रजीके अनन्य उपासक थे। उनका धन, प्राण, मन सब कुछ भगवान् श्रीरामचन्द्रमें ही समाया था । श्रीरामचन्द्रजीकी कथा सुनते और सेवा करते समय वह इस संसारको विल्कुल भूल जाते थे। भगवत्-कया वाँचते अथवा सुनते समय उनके मनपर इतना अधिक असर होता कि वह उनके शरीरपर हाव-भावके रूपमें स्पष्ट झलकने लगता था । वह जब जिस भावकी कथा वाँचते या सुनते, तव उसी भावके चिद्व उनके चेहरेके ऊपर स्पष्टरूपसे स्फुरित हो उठते थे। इस कारण वह कभी हर्पमें तो कभी शोकमें हुवे रहते थे । भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके जन्मसे छेकर विवाह-पर्यन्तकी विहारकी कथा सुनते समय उनके आनन्दका पार नहीं रहता। वनवासादिका कथा सुनकर वह शोक-सागरमें हुव जाते । उनकी ऑंग्डें कभी आनन्दाश्रुसे तो कभी शोकाश्रुसे भरी ही रहती, ऑखोंके आँस कभी सूखते ही नहीं । इस प्रकार भगवान् रामचन्द्र-को माहात्म्यको कथाएँ बाँचने और सुननेमें वह अपने दिन सुख-पूर्वक व्यतीत करते थे ।

एक समय उनके गाँवमें रामायणकी कथा हो रही थी। गाँवके वहतेरे मनुष्य कथा सनने जाते थे: परम भक्त तलसीदास भी वहाँ जाते और दूसरे छोगोंके साथ वैठे-बैठे कथा सनते। सनते-सनते श्रीरामचन्द्रजीके ऊपर प्रेम होनेके कारण उनकी आँखोंसे अविरल अश्रधारा वहा करती । वह सुननेमें इतने तल्लीन हो जाते थे कि कभी तो वड़े जोरसे ठहाका मारकर हैंस पड़ते थे. कमी फूट-फूटकर रोने लगते थे। कमी आनन्दमें आकर कृदने लगते थे तो कभी खड़े होकर हाथ और जंघाके ऊपर हाथसे थापी देकर छठाँग मारते थे । इस प्रकार रामायणमें जब जो विषय आता था उसी विषयके अनुसार उनके हृदयमें रीद्र और करुण आदि रस तुरन्त ही उत्पन हो जाते थे। एक दिन सीताहरणकी कथा आयी । पौराणिक महाराज श्रीसीताजीके हरणका वर्णन करने छगे । अब तुळसीदासके दुःखका पारावार न रहा । प्रथम तो वह श्रीरामचन्द्रजीके वनवासकी कथा सनकर ही शोक-सागरमें इबे हुए थे, अब माताका हरण सुनते ही फ़ट-फ़टकर रोने छगे । जब रावण संन्यासीका वेष धरकर छछ करके वलात्कारसे उन्हें हरणकर छङ्काकी ओर छे चला, तब तुलसीदाससे नहीं रहा गया । वह एकदम उछलकर खड़े हो गये, क्रोधसे उनका शरीर थर-थर कॉॅंपने लगा, ऑखें लाल हो गयीं और सारा शरीर पसीने-पसीने हो गया । दो युगों पहलेका दृश्य मानों आज उनके सामने प्रत्यक्ष हो गया । उस समय वह तीव खरसे बोल उठे-'अरे ! इतना साहस ! मेरे सामने ही माताजीका अपहरण !

1

दुष्ट रावण ! मैं तेरे इस दुष्कर्मके लिये तुझे उचित दण्ड दूँगा और अपनी माताजीको छुड़ाकर श्रीरामचन्द्रजीके वाम अंगमें बैठाऊँगा । अरे, रावण ! त् कहाँ मागा जा रहा है ? दुष्ट ! खड़ा रह, खड़ा रह !!

इस प्रकार वोल्ते-बोल्ते वह अपने घरकी ओर चले। अत्यन्त क्रोधित होनेके कारण उनका खर अस्पष्ट हो गया था, अतः उनको वात ठीक-ठीक किसीको समझमें न आयी। उनके घोर गर्जन, विकराल आँखें और भयङ्कर मृकुटिको देखकर किसीको उनके पास जानेका भी साहस नहीं हुआ। तुल्सीदास अपनी धुनमें सीधे घर जाकर अख-शखोंसे सुसज्जित हो तेज घोड़ेपर सवार हुए और रावणको मारकर सीतादेवीका उद्धार करनेके लिये चल पड़े। घोड़ेको तेज चालके सामने तीरकी गतिकी भी कोई गिनती नहीं थी। देखते-ही-देखते वह क्षणभरमें सवकी नजरोंसे ओझल हो गयें।

इस प्रकार तुल्सीदास दौड़े, परन्तु क्या वह अकेले ही थे हैं नहीं, नहीं; ऐसा क्योंकर होता है उनके साथ एक दूसरा साथी भी चला । वह कौन था है वह या वहीं जिसे वह प्राणपणसे चाहते थे, जिसको उन्होंने अपना तन-मन-धन अर्थात् सर्वस्व समझ रक्खा था ।

तुळसीदासको दिशाका ज्ञान नहीं है, वह समुद्रके किनारेकी ओर बढ़ते जा रहे हैं। तुळसीदासके साथीने भी वही राह पकड़ी । तुळसीदास पवन-वेगसे चळनेवाळे घोडेपर सवार थे, तो उनका साथी मनसे भी अधिक वेगसे चलनेवाले घोडेके ऊपर सवार होकर जा रहा था । तुल्सीदासके समुद्र-तीरपर पहुँचनेके पूर्व ही वहाँ पहुँचकर वह किनारेपर खड़ा हो गया । तुल्सीदासको शरीरकी विल्कुल सुध न थी । उनका मन तो एकमात्र सीतादेवीके उद्धारके विचारमें ही लगा हुआ था । उनके विलक्षण साथी यह पहलेहीसे जानते थे कि तुलसी-दास सीघे आकर समुद्रमें कृद पड़ेंगे; इसलिये वह मानो पहलेसे ही वहाँ पहुँचकर समुद्रसे मार्ग देनेको कहने छगे। तुलसीदासके साथीकी घारणा गलत नहीं थी । समुद्रका गम्भीर गर्जन, उसकी उछलती हुई लहरें और शुभ्र फेनका विकट हास्य इनमेंसे कुछ भी तुलसीदासको नहीं दीख पड़ा । दीखता भी कैसे ? उनका लक्ष्य भी तो इनके ऊपर न था। वह तो छङ्कामें जाकर रावणको मार श्रीसीताजीको छाकर श्रीरामचन्द्रजीके साथ उनका मिछाप करवाना चाहते थे।

्रविमें साथीने उनको वहीं रोक्तनेका विचार किया । परन्तु ब्रह काम बिना स्थूल आकार धारण किये हो नहीं सकता था । इसिलिये आपने मनुष्य-देहके आवरणमें अपनेको ढक्तनेका निश्चय किया और तुरन्त एक ब्रद्ध विद्वान् ब्राह्मणका वेष धारणकर पीलेसे तुलसीदासको बार-बार पुकारकर कहने लगे—'अरे ! खड़े रहो, खड़े रहो ! उतावले होकर समुद्रमें मत कूदो, मत कूदो !!' परन्तु उनकी आवाज तुल्सीदासको सुनायी नहीं दी। तुल्सीदासका घोड़ा तेजीसे समुद्रकी ओर वढ़ा चला जा रहा था, इससे विप्ररूपधारी साथी विचारमें पड़ गये। पीछे रहनेसे कार्य सिद्ध होनेकी सम्भावना न धी इसलिये उन्होंने उनके आगे—सम्मुख जानेका विचार किया। उन मनोगामीको तुल्सीदाससे आगे निकल जानेमें जरा भी देर न लगी। देखते-देखते वह तुल्सीदासके सामने पहुँचकर कहने लगे—'अरे भाई! यह क्या करते हो ! समुद्रमें कूदकर क्यों प्राण देनेके लिये तैयार हो रहे हो !'

तुल्सीदास उनकी ओर विना देखे ही कोधमें भरकर कहने लगे—'अरे तुम यह क्या कह रहे हो ? जगजननी सीतादेवीको रावण हर ले जाय और मैं प्राण धारण किये यह दृश्य देखा कहाँ ? मैं अभी लक्कामें जाकर रावणका उसके सारे कुटुम्बके साथ नाश करके जानकी माताका उद्धारकर उन्हें जगत्-पिता श्रीरामचन्द्रजीके वामाङ्गमें बैठा दूँगा।'

तुल्सीदासके साथीने देख लिया कि वह किसी ऐसे भुलावेमें पड़नेवाले नहीं हैं। तथापि और भी एक-दो प्रयत्न करके देखने- का और इसपर भी यदि वह न समझें तो शीव अपने दर्शन देकर भी उन्हें रोकनेका विचार किया। तत्पश्चात् उन्होंने तुल्सीदासको पुकारकर पुनः कहा—'अरे, तुम तो पागल जान पड़ते हो, जान पड़ता है कि तुम्हारी सुध-बुध जाती रही है;

छङ्कामें जाकर रावणको तो मारोगे परन्तु पहले यह तो वताओ कि इस समुद्रको कैसे पार करोगे ? पागळपन छोड़कर वापस घर छोट जाओ | व्यर्थ ही प्राण देनेसे क्या होगा ?'

इतना सुननेपर भी तुल्सीदास रुके नहीं । यह चले ही जा रहे हैं, सामने भी नहीं देखते ।

अव वृद्ध ब्राह्मण-वेप-धारी भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने भक्तकी दृद्धतापर गद्गद होकर विचार किया, 'यह मेरा परम भक्त है। यों माननेवाला नहीं है, परन्तु एक बार और भी प्रयन्न करके देखा जाय, नहीं तो पीछे इसको साक्षात्कार कराना ही पड़ेगा।' ऐसा विचारकर वह तुल्सीदासके पास जा पहुँचे और बोले—'वीर! त् धन्य है! धन्य है! तेरी वीरताकी विल्हारी है! परन्तु भाई, त अब लङ्कामें जाकर क्या करेगा? किसको मारेगा? रावणको मारकर तेरे राम श्रीसीताजीको तो कमीके अपने घर ले आये।'

इतनेपर भी तुलसीदास पीछे म लौटे, उनका लौटनेका मन भी नहीं हुआ | वह पहलेके ही समान चलते हुए कहने लगे— 'महाराज ! क्षमा करो । मैं तुम्हारी वातपर विश्वास नहीं कर सकता । मुझे वापस लौटानेका व्यर्थ प्रयास क्यों कर रहे हो ? चाहे अचल पर्वत चलायमान हो जाय, अग्नि शीतलता धारण कर ले, रातमें सूर्योदय हो जाय, जड पदार्थ बोल उठें और चन्द्रमासे अंगारें झड़ने लगें परन्तु यह निश्चय समझो कि तुलसीदास यों कदापि नहीं छोट सकता । हाँ, एक उपाय है, यदि मेरे श्रीराम सीताजीको घर छे आये हों तो वे यही मेरे सामने प्रकट हो जायँ। मैं यहीं श्रीरामचन्द्रजीके बामभागमें जानकी माताको विराजमान तथा श्रीलक्ष्मणजीको हाथमें धनुप-वाण घारण किये देख्ँ। इतना हो जाय तब मैं तुम्हारी वात मानकर घोड़ेको वापस फिरा सकता हूँ।'

भगवान्ने देखा कि भगवदर्शनके छिये जितनी दढ़ता और एकाग्रता होनी चाहिये, उतनी तुलसीदासने सम्पादन कर छी है। यह दर्शनका अधिकारी हो चुका है। यों विचार करके भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने तुल्सीदासको उसके इच्छित खरूपमें दर्शन देनेका विचार करके कहा-'त्रल्सी ! तुल्सी ! देख ! तुझको जो देखना है सो देख हे ! देख हे !!'-इस प्रकार कहते हुए भगवान् तुल्सीदासको पुकारने लगे। इन शब्दोंमें वड़ा आकर्पण था। अव तुलसीदाससे इस ओर देखे विना न रहा गया। वृद्ध ब्राह्मणको एकाएक इस प्रकार श्रीरामचन्द्रजीके रूपमें वदले हुए देखकर उनके आश्चर्यका पार न रहा। वह घोड़ेसे उतरकर वारम्वार छक्ष्मण और सीतासहित श्रीरामचन्द्रजीको प्रणाम करने लगे और नृत्य करते हुंए अपने भाग्यको सराहने छगे। आज अपने इप्टदेवके दर्शनसे तुल्सीदासके मनमें आनन्द नहीं समाता । वह नाचते हुए पुकार रहे हैं-- 'अहो ! अहो ! मेरा कैसा धन्य भाग्य ! धन्य भाग्य । आज मुझे अखिल ब्रह्माण्डके नायका दर्शन हो गया । अहा ! मुझपर खामीकी कितनी वड़ी करुणा है। प्रमु! कितनी दया! अहा! कौन जानता है कि पूर्वजन्ममें मेंने कितना तप किया था! कितने पुण्यतीर्थोंमें जान किया था और कितने दान-धर्मका व्रतानुष्टान किया था कि जिसके पुण्य-प्रभावसे इस जन्ममें आज मुझे श्रीरघु-वीरका दर्शन हुआ है! नहीं, नहीं, पुण्यकर्मोंके फल्से प्रमु-दर्शन नहीं हो सकता। यह तो प्रमु-कृपासे ही होता है। प्रभो! आपने वड़ी कृपा की। प्रमु! प्रमु! घन्य है। धन्य है। धन्य है प्रमु! बिलहारी है! मैं आपके ही शरणमें हूँ! मैं आपके ही अधीन हूँ!

इस प्रकार कहते हुए तुल्सीदास श्रीरामचन्द्रजीके चरण-कमलों में छोट गये। श्रीभगवान् मुस्कराते हुए घोले—'वेटा तुल्सीदास! सच है सकाम पुण्यकमोंसे मेरा दर्शन नहीं होता। कामना तो मनुष्यके मनका श्रम है। श्रमसे किये हुए कार्यहारा यथार्थ वस्तु नहीं मिलती। जो निष्कामभावसे केवल अनन्य मिक-पूर्वक मेरा भजन करता है उसीको मेरे दर्शन होने हैं। वस्स! मेरे लिये जब त अपने-आपको भूलकर अपार महासागरमें आतम-समर्पण करनेको तैयार हो गया, तब में तुझे दर्शन कैसे न दूँ! तुल्सी! में तुझपर बहुत हो प्रसन्न हूँ। अन तेरी इच्छा हो सो माँग ले। मैं निःसन्देह तुझे वही दूँगा।'

श्रीप्रभुके दिन्य विप्रह्का दर्शन करने तथा उनके श्रीमुखके अमृतमय वचनोंको सुननेसे तुलसीदासका मन तृप्त हो गया था । उनकी समस्त इच्छाएँ आप ही पूरी हो गयीं। अन और क्या चाहिये! वह क्या माँगें! वह रो पड़े और रोते-रोते श्रोप्रभुको साप्टाङ्ग प्रणामकर कहने छगे—'प्रभु! दीनद्याछ! वरदानका छोम देकर क्या मेरी परीक्षा कर रहे हो! मैं तो गिरा ही पड़ा हूँ, मेरी परीक्षा कैसी प्रभु! छळचाओ मत! इतनेपर भी यिद वरदान देना हा हो तो मुझे यही वरदान दो कि सोते-जागते, चळते-फिरते जब कभी आपके दर्शनके छिये मेरा मन ब्याकुळ हो तभी आपका साक्षात्कार हो। शुद्धि-अशुद्धि अथवा काळाकाळका विचार न कर, जब मैं स्मरण करूँ, तभी आप सम्मुख प्रकट होकर मुझे कृतार्थ करें। इसके सिवा मुझे और कुछ भी नहीं चाहिये।'

'तुल्सीदास ! ऐसा ही होगा, ऐसा ही होगा ।' इस प्रकार कहकर प्रमु अन्तर्धान हो गये।

तुल्सीदास भी हृदयमें श्रीहरिको जगाकर जगत्को श्रीहरिकी विभृतिका ज्ञान करानेके लिये तीर्थयात्राको चल पड़े। अनेक तीर्थोमें यूमते-धामते वह प्रेमधाम श्रीवृन्दावनमें आये। वृन्दावनमें वह वन-वन पूमने लगे। वनके हरिण और मोर उनके पास आकर प्रेमसे खेलने लगते। यह देखकर उनके आनन्दका पार नहीं रहता। उनका मन सदा आनन्दमय रहता और आँखें प्रेमाश्रुसे भींगी रहतीं। वजके वालक जब उनके पास आकर ताली वजा-वजाकर इस प्रकार गाते—

श्यामकुण्ड राघाकुण्ड गिरि-गोवर्झन। मधुर-मधुर चंशी बाजे धन वृन्दावन॥

—तो उन्हें बहुत ही आनन्द होता । उन्हें अनुभव होने छगता मानो श्यामसुन्दरकी मुरछीकी मधुरध्विन उनके कानोंमें प्रवेशकर अन्तःकरणको जागृत कर रही है ।

इस प्रकार भ्रमण करते हुए वह एक दिन किसी कुझमें जा पहुँचे । वहाँके महन्तजीका नाम गोपालदास था । महन्तजी बहुत अच्छे थे । देव-सेवा और अतिथि-सेवामें उनका दृढ़ अनुराग था । साधन-भजनमें भी प्रवीण थे । परन्तु इन सद्गुणोंके होते हुए उनमें एक बड़ा दोष रह गया था । वह दूसरे सम्प्रदायके वैष्णवों-को समान दृष्टिसे नहीं देखते थे और न समान रूपसे उनका आदर-सत्कार ही करते थे । जो 'राधाकृष्ण' कहता हुआ आता उसके लिये उत्तम भोजन तैयार कराया जाता और 'सीताराम' कहनेवालेको सिर्फ रूखा भात और रोटी दी जाती । तुल्सीदास वैष्णव तो थे, परन्तु वह श्रीराममक्त थे । इसलिये वह 'जय राम जय जय सीताराम' कहते हुए कुझमें घुसे । इससे उनको भी प्रसादमें रूखा-सूखा मात और रोटी ही मिली ।

पता नहीं, वृन्दावनेश्वरी श्रीराधारानीकी क्या इच्छा थी । गोपालदास उनके राज्यमें रहकर इस प्रकारकी मेदनुद्धि रक्लें, यह शायद उन्हें ठीक नहीं लगा हो, इसीसे उन्होंने गोपालदासकी बुद्धि शुद करनेके लिये हाँ अनन्य भक्त तुल्सीदासको वहाँ जानेकी प्ररणा की होगी ।

साधारणनः तुलसीदासजी प्रायः उपवास किया करते, इच्छा होनेपर, उन्हें जो जुळ मिलता, उसीपर सन्तोपकर वह अपना कान चला लेते थे। इसलिये यह बात नहीं थी कि वह सूखा भात न खा सकें। परन्तु श्रीराधारानीकी प्रेरणासे आज उनसे बोले विना न रहा गया। वह हैंसते-हैंसते गापाल्दाससे कहने लगे-'महन्त-जी महाराज। मुझे क्या यह सूचे भात ही खाने पड़ेंगे? इतना धी, अन्न और दूसरे पदार्थ-रक्षे हैं, थे किसके लिये हैं ?'

गोपाल्दासजी बोले—'भाई ! जो श्रीराधाकृष्णके नामका कीर्तन करता है उसीके लिये यहाँ उत्तम स्थान और उत्तम भोजनकी व्यवस्था है । दूसरोंको केवल भात और रोटी ही दी जाती है ।'

यह युनकर तुरुसीदासको बड़ी हैंसी आयी और वह हैंसते हैंसन बोरे—'अच्छी बात है महन्तजी ! में आपके यहाँ 'सीताराम' कहता हुआ ही उत्तम भोजन करूँगा।'

तुःस्सीदासकी यह वात गोपालदासको विल्कुल ही नहीं रुची, वह एकाएक क्रोधित हो कहने लगे—'अरे जाओ, जाओ ! इतना गर्व अयोध्यामें दिखलाना । हाँ, एक वात है, यदि तुम अपने सीतारामको हमें दिखला दो तो समझा जाय कि तुम्हारा गर्व करना अनुचित नहीं है । यों तो तुम-जैसे न्यर्थ गर्व करने-

वाछे और छम्बी-चौड़ी डींग हाँकनेवाछे बहुतेरे साधु आते हैं। केवछ डींग हाँकनेसे कुछ नहीं होता।'

महन्तकी वात सुनकर तुल्सीदास पहले तो खूव हँसे। फिर वोले—'ठीक, महाराजजी! आप यथार्थ कहते हैं। अच्छा, मुझे एकं वार श्रीमन्दिरमें जानेकी अनुमित देंगे?'

महन्त बोले—'क्यों नहीं ? एक वार नहीं, हजार वार जा सकते हो । परन्तु तुमको अपना सीताराम हमें दिखाना पड़ेगा । इसके वाद तुम जैसा कहोगे वैसा ही किया जायगा ।'

तुल्सीदासने इस वार कुछ न कहकर सिर्फ हैंसकर अपनी सम्मित वतलायी। श्रीमन्दिरमें प्रवेश करके उन्होंने मन्दिरका द्वार बन्द कर लिया, तत्पश्चात् वह श्रीराधाकृष्णकी युगलमूर्तिके समीप अपना दुःख निवेदन करने लगे और रोते हुए वोले—'हे नाथ! मुझे दढ़ निश्चय है कि तुम्हीं कौसल्यानन्दन श्रीदशरयजीके पुत्र हो और तुम्हीं देवकीके पुत्र तथा नन्दनन्दन भी हो! तुम्हीं महावल्यान् धनुर्धारी श्रीरामचन्द्रजी हो और तुम्हीं इस जगत्को मोहित करनेवाले मुरलीघर श्रीकृष्ण हो! तुम्हीं अनादि, अनन्त जानकीवल्लम हो और तुम्हीं मक्तोंके जीवनखरूप श्रीराधावल्यम हो। प्रमो! तुम जगत्के मनुष्योंके कल्याणके लिये अनेक रूप धारूण करते हो और अनेक प्रकारसे जगत्का प्रतिपालन करते हो। मेरे प्रमु! तुम्हारे-जैसा दयालु कोई भी नहीं।

अब मुझपर दया क्रो और एक वार श्रीरामावतारकी मूर्ति भारणकर अपना प्रबट प्रताप दिखलाओ।'

सने भक्तको सची प्रार्थना भगवान् कभी अखीकार नहीं करते । देखते-ही-देखते श्रीराधाकृष्णको प्रतिमा श्रीसीतारामजीकी प्रतिमाके रूपमें बदल गयी । उसे देखकर तलसीदासने अत्यन्त आनन्दपूर्वक-'जय जय श्रीसीताराम' कहते हुए मन्दिरका द्वार खोंड दिया । इस अहुत घटनाको देखकर सब विस्मय-सागरमें हुव गये। महन्तका मुँह फीका पड़ गया। एक भी शब्द उसके मुँहसे न निकल सका। आनन्दित होकर सबने भगवान्का दर्शन विाया और साधाङ्ग दण्डवत्-प्रणाम किया । महन्त-की प्रार्थनासे तुल्सीदासने फिर श्रीमन्दिरमें प्रवेश किया और श्रीप्रमुसे पहुँहै-जैसा श्रीराघाकृष्णका रूप धारण करनेकी प्रार्थना को । अविरत अश्रप्रवाहसे उनका मुँह तया वक्षःस्यल भीग गया । तुल्सीदास ऑर्ग्ने म्रॅंदकर श्रीप्रभुके चरणकमलीमें प्रार्थना करने छो । बुछ देरके बाद अधुनेग कम होनेपर उन्हें दीख पड़ा, 'अहो ! श्रीसीतारामरूप अब नहीं है, अब तो पहलेके समान श्रीराश्रादृष्ण ही सिंहात्तनके ऊपर विराजमान हैं । भगवान्के मुस्कराते हुए मुखकमठको देखकर तुल्सीदासको परम आनन्द हुआ । उन्होंने दोनों हाय उठाकर श्रीप्रमुकी करुणाका जयजयकार करते हुए मन्दिरके पट खोट दिये। श्रीसीतारामकी म्र्तिको पुनः श्रीराधाकृष्णके खरूपमें परिणत देखकर गोपाछदास

और अन्य वैष्णवोंके आनन्दकी सीमा न रही। आनन्दकी अधिकतासे किसीके मुखसे एक शब्द भी न निकल सका। इसी भावमें, इसी मौन-स्थितिमें बहुत समय बीत गया। तत्पश्चात् श्रीराधाकृष्णके चरणकमलोंमें प्रणाम करते हुए सब ऊँचे खरसे बोल उठे— 'प्रमु! प्रमु! तुम्हें प्रणाम है! प्रणाम है! तुम और तुम्हारे भक्त दो नहीं हैं, दोनों एक खरूप हैं। हे प्रमु! इस संसारमें जो तुममें और तुम्हारे भक्तोंमें भेद-भाव देखता है, वह बड़ी भूलमें है। हे स्वामी! आज हमने प्रत्यक्ष देख लिया, आज हमें विश्वास हो गया कि भक्तके शरीरमें तुम्हारें भक्तोंकी जय! जय प्रमु! जय, तुम्हारी जय! और तुम्हारें भक्तोंकी जय! जय प्रमु, जय! विल्हारी, प्रमु बल्हारी!'

ऐसा कहकर सभी तुळसीदासके चरणोंमें गिरने छगे। विनयकी आदर्श मूर्ति तुळसीदासने उन सबको यथामित उपदेश दिया और उनसे विदा हो प्रस्थान किया। मक्तको मान-सम्मानका बहुत ही भय रहता है। प्रतिष्ठासे वे सदा उरते हैं। और इसिछ्ये ऐसे स्थानमें वे रहते भी नहीं। तुळसीदास भी इस प्रतिष्ठाके भयसे ही वहाँसे चळ दिये। वह कहाँ गये और इसके बाद उनका क्या हुआ, इसका समाचार किसीको न मिळा।*

बोलो भक्त और उनके भगवान्की जय।

चे तुलसीदास श्रीरामचिरतमानसके रचयिता गोस्वामी
 चुलसीदास नहीं हैं।

भक्त गोविन्ददास

सारकी विचित्र गित है, इसमें आज जो अच्छा छगता है कछ यही बुरा माछम होने छगता है। वास्तवमें जो यथार्थतः अच्छा होता है यह तो कभी बुरा हो नहीं सकता, परन्तु सांसारिक वस्तुजोंमें तो अच्छे-बुरेका आरोप हम अपने मनसे करते हैं। सत्य, कल्याणमय और सुन्दर वस्तु तो परमात्मा है जो सदा एक-सा रहता है। किसी भी अवस्थामें उसमें परिवर्तन नहीं होता। गोविन्ददासजी भी उसी 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' की खोजके छिये घर-संसार छोड़कर निकल पड़े हैं, उनकी संसारासिकका बन्धन पके आमकी भाँति टूट पड़ा है।

भक्त गोविन्ददासजीका जन्म उत्तम ब्राह्मणवंशमें हुआ था। उनके घरमें पतिव्रता स्त्री, एक पुत्री और दो पुत्र थे। गोविन्द-दासजी राज्यके दीवान थे । महल-मकान और वाग-वगीचोंकी इनके कमी नहीं थी, परन्तु इन भोगपदार्थीसे उनको सुख नहीं मिलता था । वे संसारकी नश्वरतापर विचारकर मन-ही-मन कहा करते—'ओहो ! मेरे जीवनको धिकार है; मैं भगवान् सत् , चित् , आनन्द प्रभुमें मन न लगाकर अपने मनुष्य-जीवनको तुच्छ विपयोंकी सेवामें विता रहा हूँ, संसारकी कोई भी चीज साथ नहीं चलती. सब क़छ यहीं रह जाता है। और जो कुछ है वह भी तो अपना नहीं है। संसारके प्राप्त विपयोंका मनुष्य अपनी इच्छा-नुसार मोग भी तो नहीं कर सकता । खानेको है, परन्तु खास्थ्य ठीक नहीं है, ऐसी अवस्थामें उसे और भी दुःख होता है । फिर संसारका सम्बन्ध भी तो खार्थका ही दीखता है, जबतक मनुष्यके पास घन-सम्पत्ति है तमीतक उसका आदर-सत्कार होता है। घरवाले भी तभीतक उसे पूछते हैं जयतक कि वह उन्हें कुछ कमाकर देता है। जब बुढ़ापा आ जाता है, धन कमानेकी शक्ति . नहीं रहती तब उसके द्वारा किसीका भी मनोरञ्जन नहीं होता।

वह सबके लिये भाररूप हो जाता है । उस समय बन्ध-बान्धव सब अलग हो जाते हैं, कोई वाततक नहीं पृछता। बुद्धि भी मारी जाती है, क्या करते क्या कर वैठता है, छड़के-वाले दिल्लगी - उड़ाते हैं । जीवनभर नाना प्रकारके संकट सहकर जो धन इकट्टा किया था, उसपर भी दूसरे मालिक वन बैठते हैं, कमाये हुए ्धनका उपयोग भी अपनी इच्छानुसार नहीं हो सकता । आँखोंके सामने अपने मनके प्रतिकूछ कायोंमें धन खर्च होते देखकर दूना दुःख होता है। कैसी मूर्खता है। इस प्रकारके क्षणभङ्गर और दुःखपूर्ण संसारमें अत्रतक फेँसा हुआ हूँ । सारे विश्वका सुजन और भरण-पोषण करनेवाळे प्रभुकी भक्तिका तो मनमें कभी विचार भी नहीं आता । हाय ! जो प्रभु कामधेनुकी तरह सब जीवोंकी कामना पूर्ण करते हैं, असंख्य माताओंके स्नेहको छेकर जो सबका पाछन-पोपण करते हैं, सारे संसारकी व्यवस्था और उसका सुचारुरूपसे सम्बालन करते हैं, केवल भावमात्रसे ही जो प्रसन्न हो जाते हैं, मुझ-सरीखे पापीके जीवनको पुण्यमय वनानेकी जिनके सिवा अन्य किसीमें भी शक्ति नहीं है, जो विना ही कारण मुझपर सदा दया करते हैं, ऐसे अति मधुर नित्य-नूतन सदा एकरस भगवान्का भजन छोड़कर दूसरे कामोंमें मन छगाना कितना वड़ा प्रमाद है !' यों विचार करते-करते एक दिन उन्होंने निश्चय कर लिया कि 'वस, अब जो कुछ जीवन बन्वा है, वह सब प्रमुक्ती सेवामें ही लगाऊँगा, संसार और घरका त्यागकर केवल प्रभु-मजन ६८

ही करूँगा। वह देखो, मेरे नाय मुझे कितने स्नेहसे अपनी ओर बुछा रहे हैं, अब तो मैं उन्होंकी शरण जाऊँगा, उन्होंकी आज्ञाका पाछन करूँगा और उन्हीं आनन्दकन्द नन्दनन्दनके पदारिवन्दकी रजका सेवन करके कृतार्थ होऊँगा।'

सच्चे वैराग्य और विवेककों प्रेरणासे घर-संसारका त्याग करना कोई आसान वात नहीं है। विचार तो बहुत छोग करते हैं, परन्तु वास्तविक त्याग होता नहीं है। कहीं जोशमें आकर त्याग भी देते हैं, तो फिर उस त्यागको निवाहना बहुत कठिन होता है। जैसे हवा भर जानेपर वैछन ऊपर-ही-ऊपरको उड़ता है परन्तु हवा कम होते ही नीचे गिरने छगता है, इसी प्रकार क्षणिक जोश उतरते ही त्यागको वृत्ति नष्ट होने छगती है। भगवान् और उनकी कृपा तथा शक्तिपर विश्वास, दढ़ वैराग्य और इन्द्रियोंके महान् संयससे ही त्यागका जीवन निम सकता है।

भगवान्ने गीतामें कहा है कि जो श्रद्धावान् होता है, भगवान्के परायण होता है और अपनी इन्द्रियोंको वशमें रखता है, उसीको तत्त्वज्ञानको प्राप्ति होती है। भगवान्की महिमापर श्रद्धा हुए विना भोगोंसे वैराग्य नहीं होता। और वैराग्य इन्द्रिय-संयम विना टिकता नहीं। भक्त गोविन्ददासजीका भगवान्पर दढ़ विश्वास और इन्द्रियोंपर पूरा कावृ था, इसीसे उनका त्याग सचा था और इसीसे उन्होंने त्याग किये हुए भोगोंकी ओर कभी नजर नहीं फिरायी। घरका त्याग करनेके वाद गोविन्ददासजी प्रभुका स्मरण करते हुए उनके पवित्र धामों—तीर्घोंमें परिश्रमण करने लगे।

प्रेमका यह नियम ही है कि जिसपर प्रेम होता है, उसकी हर एक चीज, उसके रहनेका स्थान, सोनेकी जगह, भोजनकी सामग्री, पहननेकी जृतियाँ, यहाँतक कि उसके नामकी चर्चातक बड़ी प्यारी, बड़ी मीठी लगने लगती है। जो भक्त भगवान्से प्रेम करता है, उसको वे स्थान वड़े ही प्रिय और मधुर माछम होते हैं जो उसके प्रेमास्पद प्रमुको प्रिय हैं, जहाँ प्रभुने निविध **डीडाएँ** की हैं। वह उन स्यानोंमें जाता है, वहाँकी घूडिको उठा-उठाकर हृदयसे लगाता है और मस्तकपर धारण करता है। वहाँकी प्रत्येक चीज उसे प्रेममयी दीख पड़ती है और वह चारों ओर केवल आनन्द ही देखता और प्राप्त करता है। 'अहा ! यह र्धार-समीर, यह यमुनापुलिन, यह निकुञ्ज-कानन, यह सेवाकुञ्ज, यह रास-स्वर्टा, मेरे प्यारे जहाँ नित्य नयी छीटा करते थे, कैसी सुन्दर हैं, कैसी मनोहर हें, कैसी मधुर हें !' यों विचार करते हो प्रभुकी खीलाका दृदय उसकी आँखोंके सामने आ जाता है, वह सुग्य होकर वहीं रम जाता है, अश्रुपात करता हुआ गद्गद कण्ठसे प्रभुके प्रेमका प्रलाप करने लगता है। भगवत्-प्रेमके भिखारी भक्त इसी हेतु तीर्थोमें विचरते हैं और वहाँके दस्योंको देख-कर तथा अपने प्यारे प्रभुके प्यारे भक्तोंका सङ्गकर परम आनन्द लाभ करते हैं। प्यारेका प्यारा मनुष्य, प्यारेकी प्यारी वस्तु, प्यारेका प्यारा स्थान, प्यारेकी प्यारी बोल-चाल, उस प्यारेसे प्यार करनेवाले प्रेमीको कितनी प्यारी होती है, इसका न तो उल्लेख हो सकता है और न अनुमान ही। यह तो अनुमवकी चीज़ है। हमारे गोविन्ददासजी भी इसी हेतुसे तीर्थ-थात्रा कर रहे हैं।

आजकलको तरह उस समय तीर्थ-यात्रा सैरकी या 'नीच करत्ति' की छीछास्यछी नहीं थी, गोविन्ददासजीकी तीर्थ-यात्राका चित्र देखिये । वे ऊँचे खरसे 'हरि' 'हरि' प्रकारते और प्रेममें झुमते हुए जा रहे हैं, मनमें कहीं ममता या अहंकारका नाम नहीं रह गया है, मान-अपमान तथा सुख-दु:खमें समान भाव है, प्राणि-मात्रमें समदृष्टि है, उनकी दृष्टिमें छोटा-वड़ा कोई नहीं, सभी प्रसुके खरूप हैं । प्राणोंमें आनन्द भरा है । आहार-निद्राकी स्पृति नहीं है। चिकना-रूखा, साग-पात, कन्द-मुळ जो कुछ हरि-इच्छासे मिल जाता है उसीको भगवानके निवेदन करके खा हेते हैं। किसी-किसी दिन वह भी नहीं मिलता, ता भी उनको कोई शोक नहीं है। प्यास लगती है और कहीं कुआँ, वावड़ी, तालाव, नदी मिल जाती है, वहीं पानी पी लेते हैं। नहीं मिलते तो प्यासे ही रह जाते हैं। घूप और वर्षाको सहन करते हैं। न पासमें कोई सामान है और न सामान वटोरनेकी कल्पना ही है। मस्त हुए चले जाते हैं। कहीं-कहीं तो उन्हें पागल समझकर छोग दुत्कारने और मारने दौड़ते हैं, गाँवसे निकाल देते हैं, परन्तु इससे उनको कोई दुःख, क्रोध या क्षोभ नहीं होता।

वे मन-हो-मन प्रमुकी छीला देख-देखकर हँसते और प्रसन्न होते हैं।

इस चालसे तीर्ध-यात्रा करते-करते गोविन्ददासजी क्रमशः गया, गोमती, काशी, प्रयाग, मथुरा, वृन्दावन, कुरुक्षेत्र, अयोध्या, हरिद्वार, बदरिकाश्रम, द्वारका, प्रभास, श्रोरङ्गक्षेत्र, सेतुवन्ध शामेश्वर आदि पवित्र तीर्थोंकी यात्रा समाप्त करके एक दिन अपने मनमें विचारने लगे कि 'वस, अव प्रभुक्ते अनन्य सेवक, प्रभुसे भी बढ़कर पूजनीय, भगवान् श्रील्क्ष्मणजीके दर्शन करके कृतार्थ होना है । भक्तोंकी भक्ति भगवान्की भक्तिसे भी बढ़कर सुख-शान्तिदायिनी हुआ करती है, फिर श्रील्क्ष्मणजी तो साक्षात् भगवान्के ही अंश हैं।' यह विचारकर वह श्रीलक्ष्मण-क्षेत्रकी ओर चले।

चलते-चलते गोविन्ददासजी लक्ष्मण-क्षेत्रकी सीमाके कुछ समीप आ पहुँचे। मार्ग बहुत ही दुर्गम, निर्जन, हिंसक जीवोंसे पूर्ण और घोर अरण्यमय था। गोविन्ददासजीने अकेले ही भयानक जंगलमें प्रवेश किया। शिरमर-झिरमर पानी वरस रहा था, सारे रास्तेमें कीचड़ और फिसलाहट हो रही थी। गोविन्ददासजीका बूढ़ा शरीर, कई दिनोंसे उन्हें कुछ खानेको नहीं मिला, इसपर सारा शरीर पानीसे भींगकर तर हो गया। कड़ी सदी पड़ रही थी, गोविन्ददासजीका शरीर काँपने लगा, उनके दाँत वजने लगे, शक्ति जाती रही, वे चलते-चलते ही अशक होकर एक

पेड़के नीचे गिर पड़े, उठनेके छिये वहुत प्रयत किया, परन्तु सब निष्फल । गोविन्ददासजीका मनोवल पूर्ववत् या, वे पड़े-पड़े हृदयमें श्रीलक्ष्मणजीका ध्यान करते हुए मन-ही-मन प्रार्थना करने लगे-- 'हे भगवन् ! आप करुणाके सुमेरु हैं, आप हा सव-के गुरु, ज्ञानदाता, हितकारी और माता-पिता हैं, आप जो कुछ करते हैं, सब मङ्गल ही करते हैं, आपकी इच्छा पूर्ण हो । हे प्रभो । आप अनन्त कोटि ब्रह्माण्डके नाथ हैं, आप श्रीरघुनाय-जीके छघु भ्राता हैं, आपके तेज, रूप और वलकी समता कौन कर सकता है ? आप अनन्त हें, अनन्त मृर्ति धारण करके जीवोंके भीतर-वाहर फैळे हुए हैं। में आपके चरणोंकी शरण हूँ । मेरी रक्षा कीजिये । मैं जीवनके छिये, जगत्के तुच्छ भागों-ंको भोगनेके लिये जीना नहीं चाहता । हे दीनवन्धो ! एक बार आपके श्रीमुखके दर्शन करनेकी उत्कट अभिलापा है। वस, आपके चन्द्रमुखका एक बार दर्शन कराकर फिर चाहे सो कीजिये, विना दर्शन यह प्राण न छुटें, वस, इतनी ही प्रार्थना है।'

मक्तके इदयमें भगवान् वसते हैं, उनसे हदयकी कोई वात छिपी नहीं । फिर मक्तमें प्रेमकी एक अहुत आकर्षिणी शक्ति होती है, जिसके प्रभावसे भगवान्को आकर्षित होकर भक्तके समीप आना ही पड़ता है । आज मक्त गोविन्ददासजीका दुःख द्र करने-के छिये श्रीलक्ष्मणरूपी भगवान् भीलका खरूप धारणकर हाथमें जलती हुई मसाल लेकर जङ्गलमें प्रकट हुए और गोविन्द- दासनीसे कद्दने लगे—'आग ! आपको बहुत जाड़ा हम रहा है, जरा मसालसे तापवार सस्य हो जाड़में ।'

प्रेमभरे शन्द पानोंगें पहते ही गोथिन्ददास चींक उठे, टन्होंने देगा, एक परम सुन्दर मनमोहन भील जलनी मसाल हापमें लिये पास चंठा है। उन्हें बड़ा हर्ष हुआ, उन्होंने भीलका उपकार मानना चाहा परन्तु सर्दिक गारे जीम सिकुड़ गयी थी, अतः वे एक राज्य भी नहीं बील सके। उनकी आंखोंसे हतज्ञताने ऑसुओंकी भार वह चली। सुल ताप लेनेपर बदनमें ज़रा गर्मी अर्था, तब बड़ी मुरिकलमें गोयिन्ददासजीने गद्गद कण्ठसे कहा—'मार्ट, सुझमें उठनेकी शक्ति नहीं हैं, जरा हाथ पकड़कर सुझे बैठा दो।'

मीलक्ष्यां श्रीविकागणीने हिंसते-हिंसते मसाल एक ओर रखकर हाप प्रकारकर गीविन्ददासणीको उठाकर बैठा दिया, मीलके हाथका स्पर्श होते हो गीविन्ददासणीके शरीरमें विजली-सी दीए गया, शरीर पुल्किन हो गया और सारी यकावट तथा पीड़ा स्वप्नदृत्तेको मौति अदृत्य हो गया । शरीर और जीममें पूरी ताकत था गया । गोविन्ददासजीने कहा—'भाई ! यूढ़ा हो गया हूँ, मरनेमें मुझे तनिक भी दृश्य नहीं है । परन्तु मेरे मनमें एक इण्डा बड़ी प्रकल्प है । मैं श्रील्डमणजीके दर्शन करना चाहता हूँ, इसीलिये शरीरको बचा रहा हूँ । आज तुमने मुझपर बड़ा ही उपकार किया, इसके लिये मैं किन शन्दोंमें कृतज्ञता प्रकट करूँ, कृतज्ञता प्रकट करनेकी चीज भी नहीं है, अधिक क्या कहूँ, आज मैं तुमको धर्मका पिता मान्ँगा, तुम आजसे मेरे धर्म-पिता हुए।'

यों कहकर गोविन्ददासजी मन-ही-मन सोचने छगे कि 'ज्रूर यह करुणामय भगवान्की छपाका फल है, नहीं तो इस निर्जन अरण्यमें कहाँ से भील आकर मुझे जीवन-दान देता! धन्य प्रभो! तुम्हारी अपार लीला है।'

गोविन्ददासजीके हृदयका आनन्द उनके मुखपर फुट निकला, उन्होंने हुँखते हुए कहा, 'धर्मपिता ! तुम्हारा नाम क्या है, तुम कहाँ रहते हो ! तुम्हारा घर यहाँसे कितनी द्र है, यहाँ तुमको इस समय किसने भेज दिया ! इस घोर संकटके समय, वरसते पानीमें इस जङ्गळमें तुमने आकर जो मुझे प्राणदान दिये हैं, इसका बदल में करोड़ जन्मोंमें भी नहीं दे सकता । मेरे लिय तुमको बहुत तकलीफ उठानी पड़ी है !' गोविन्ददासजीके इन चचनोंको सुनकर भील मुस्कराया और धारेसे वहाँसे खिसक गया । गोविन्ददासजी प्रमुक्ती करुणापर विचार करते-करते ध्यानमन हो गये । उनका हृदय आनन्दसे परिपूर्ण हो गया । ध्यानकी मस्तीमें उन्हें शरीरकी भी सुधि नहीं रही । कुछ समय पथात् जब बाह्य ज्ञान हुआ तब उन्हें भूख-प्यासका पता लगा । उन्होंने सोचा, यहाँ इस घोर वनमें, जहाँ मनुष्यके दर्शन भी दुर्लभ हैं, खानेको कहाँसे आवेगा ! पर तुरन्त ही इस चिन्ता-को छोड़कर वे 'श्रीराम कुण हिरे' कीर्तन करने लगे । जो गर्भ-

में बाल्ककी रक्षा करते हैं, काठके अन्दर क्षुद्र कीड़ेको मी साना पहुँचाते हैं, वे भगवान् विश्वम्भर भक्तको भूखा कैसे रहने देते ? दीनानाय टक्ष्मणजी अवकी वार एक ब्राह्मणका वेश धारणकर गरमागरम खिचड़ी, शाक, दहीं आदि छेकर प्रकट हुए और गोविन्ददासजीके पास जाकर उनसे बोले-- 'ब्राह्मण देवता ! माल्म होता है, तुम्हें भूख लगी है। हो, मैं भोजन लाया हैं. इसे खाकर तृप्त होओ ।' सुनते ही गोविन्ददासजी तो आश्चर्य-सागरमें डूत्र गये, आँखें फिराकर देखा तो उन्हें एक परम धुन्दर तेजसी ब्राह्मणमृति भोजनका थाल हाथमें लिये खड़ी दिखायी दी । मासणको देखकर गोविन्ददासजीको वड़ा आनन्द हुआ । उन्होंने पाल ले लिया। अनकी सुगन्वसे उनका मन हरा हो गया, गरमागरम स्रवासित खिचड़ी देखकर उन्हें वड़ा अचरज हुआ । वे शरीरकी सुधि-बुधि भूल गये । नाँव-गाँव पूछना चाहते थे, परन्तु पूछ न सके, घीरे-घीरे खाने छगे। खिचड़ीमें अमृत, हृदयमें अमृत, खिचड़ी लानेवाले ब्राह्मणके नेत्रोंमें अमृत, आसपासके वातावरण-में अमृत-सारा वन अमृतमय हो गया। गोविन्ददासजी प्रेम-छके मस्त हुए खा रहे हैं, कुछ अन मुँहमें जाता है, कुछ जमीनपर गिरता है। भोजन समाप्त हुआ, परन्तु गोविन्ददास-जीकी अभी वहीं दशा है, जन्नान बन्द है।

कुछ होश आया, पूछनेकी इच्छा जाग्रत् हुई, अस्पष्ट खरसे गोविन्ददासजीने कहा, 'कहिये, आप कौन हैं?' इतना कहते-

कहते उनका गला रुक गया । अब प्रभु-कृपासे उनको चेत हुआ, उन्होंने कहा, 'प्रभो ! वस, अब मैंने आपको पहचान लिया । देवता भी जिनकी मायाके वशमें भूले रहते हैं, उनको इस पामर प्राणीने अवतक नहीं पहचाना, इसमें क्या आश्वर्य है ? प्रमो ! अब इस दीनको अपने असली खरूपके दर्शन कराकर प्राणींको जीतल कीजिये ।' भक्तकी सची भावना देखकर लक्ष्मणजी प्रसन्त हो गये । उन्होंने उनकी भक्तिकी प्रशंसा करते हुए अपना असली खरूप प्रकट किया । अहा ! कैसा मनोहर-चित्ताकर्पक खरूप है ? कैसी कनक-कमनीय कान्ति है ? दिव्य गौर-सुन्दर शरीरकी कैसी अपूर्व शोभा है ? पूर्ण चन्द्रको छजानेवाला कैसा मुखचन्द्र है ? अहा ! प्रमुक्ती कमलसदश आँखें, उनके कान और नासिका-की शोभा अवर्णनीय है। लाल-लाल अधरोंपर मन्द हास्य सौन्दर्यका सौन्दर्य है। प्रभुने सुन्दर पीत वल धारण कर रक्ले हैं, विशाल चौड़ी छाती है, केसरीके समान पतली कमर और मक्तमयहारी सुन्दर चरण-कमल हैं। हाथमें सूर्यको निष्प्रम करनेवाला उज्ज्वल धनुर्वाण है। मस्तकपर अमृत्य रतजटित मुकुट है । अपूर्व रूपराशिके दर्शनकर गोविन्ददासजी मुग्ध हो गये । उनके नेत्रयुगल प्रेमाश्रुऑसे भर गये । अङ्ग-अङ्गमें आनन्द छलक उठा । उन्होंने हर्पपूरित हृदयसे गद्गद होकर कहा-- 'हे प्रमो ! हे भक्तवत्सल !! आपके चरणोंमें मेरा वार-वार प्रणाम है । मैं महामूर्ख हूँ, अज्ञानी हूँ, इसीसे आपकी भक्तवत्सलताको आजतक

नहीं जान सका। है दयामय! आज मैं आपकी कृपासे कृतार्थ हो गया ।' यों बोलते-बोलते. गोविन्ददासजीको प्रेमसमाधि हो गयी । जैसे चन्द्रकान्तमणि चन्द्रमाको देखते ही पिघल जाती है, इसी प्रकार प्रमुको देखकर प्रभुभक्त गोविन्ददासजीका हृदय पिघल गया । उनके हृदयसे माया-ममता और मोहका सर्वधा नाश हो गया। अभिमान सदाके लिये जाता रहा । प्रेमावेशमें गोविन्ददासजी श्रीटक्ष्मणजीके चरणोंमें हिपट गये । उनका सारा शरीर प्रभुसय हो गया, भेद-भाव जाता रहा, साय ही उनकी जीवन-छीला भी प्री हो गया । मिटीकी देह मिटीमें मिल गयी और पवित्र आत्मा भगवानके साय ही परम धाममें पहुँच गया । यकायक सारा अरण्य विमन्न ज्योतिसे जगमगा उठा । वनके पशु-पक्षी, कीट-पतंग, आनन्द-ध्वनि करने छगे। वह आनन्दकी शन्द-छहरी बनभूमिके प्रत्येक वृक्ष, कुन्न, लता, पत्र, फलें और फलोंमें लहराती हुई-उनके साथ कीड़ा करती हुई-सर्वत्र फैल गयी। भक्तकी दिव्य गति देखकर सारा वन-प्रदेश मक्त और भगवान्के जय-जयकारसे गूँज उठा ।

बोलो भक्त और उनके भगवान्की जय !



भक्त हरिनारायण

~{⊙©⊙}~

रमेश्वरके सच्चे भक्त अपने प्रमुक्ती मिक्तका प्रचार कर संसार-सागरकी तरंगोंमें इवते हुए दुखी जीवोंके कहें-को दूर करनेके छिये ही इस पृथिवीतछपर आया करते हैं।श्रीहरिनारायणजी मी एक ऐसे ही भक्त थे। आपका जन्म महाराष्ट्र-प्रान्तमें हुआ था। आज इनके ही पवित्र जीवनकी कुछ घटनाओंका वर्णनकर छेखनीको घन्य करना है। इनका नाम नीराजी या नामाजी था। पिता नारायणराघ देशपाण्डेने इन्हें अपने छोटे माई अनन्तरावको उनके कोई सन्तान न होनेके कारण दत्तक दे दिया था। अनन्तरावके इनका नाम बदछकर हरिनारायण रख छिया। ये अपने चचाके पास बड़े आनन्दसे रहने छगे।



भक्त हरिनारायण

कुछ समय वीतनेपर अनन्तरावके एक पुत्र उत्पन्न हो गया, इससे उसकी वालक हरिनारायणपर मनोवृत्ति वदल गयी। प्रेमकी जगह विरोधने स्थान कर लिया। धीरे-धीरे इस विरोधने उम्र रूप धारण किया। एक दिन जब हरिनारायण भोजन कर रहे थे तो विना ही किसी अपराधके अनन्तरावने उनका हाथ पकड़कर यह कहते हुए धरसे निकाल दिया कि 'अब कभी अपना मुँह हमें न दिखलाना।' बालक हरिनारायण लड़कपनसे ही बड़े सरल लभावके थे, बाहरी जगत्से बहुत कम सम्बन्ध रखकर ये सदा आन्तरिक वृत्तियोंका सुधार करनेमें ही लगे रहते थे। अतः धरसे निकाल जानेपर उन्हें तिनक भी दुःख नहीं हुआ, वरं यह सोचकर उन्हें उलटा आनन्द हुआ कि अच्छा हुआ, अब अपना सारा समय परम पिता परमेश्वरके पवित्र समरणमें ही लग सकेगा।

वे वहाँसे अपने पिताके घर आये । पिताने भी हुँझलाकर उन्हें जङ्गलकी राह बता दी । इसका कारण यह था कि आठों पहर भगवद्भजनमें लगे रहनेके कारण घरके लोग इनको विल्कुल निकम्मा समझते थ । वालक हरिनारायण पिताकी आज्ञाको सिर चढ़ाकर माताका आशीर्वाद लेने गये । माताका हृदय विलक्षण होता है । स्नेहमें भगवान्के वाद दृसरा नम्बर माताका ही है । बालक कितना ही मूर्ज, निकम्मा या दुष्ट क्यों न हो, माँके लिये तो वह 'लाल' ही है । संसार बदल जाय पर माँका स्नेहपूर्ण हृदय नहीं बदल सकता । पुत्रकी शोचनीय अवस्थाको देखकर माताका हृदय विंध गया परन्तु वह सची माता थी, मोहको छोड़कर पुत्रके यथार्थ हितके लिये हरिनारायणको समझाने लगी । उसने कहा, 'बेटा ! पिताके कहेका बुरा मत मानो, इस अनित्य संसारके सभी लोग दुःखपूर्ण विषयोंमें फँसे हैं । पाप-पुण्यका किसीको खयाल नहीं है । सचा सुख शान्तिमें मिलता है और शान्ति इस जगत्से उपराम होनेपर प्राप्त होती है, यही योगका भूषण एवं चित्तके समाधानका असली कारण है । अतएव तुम मेरे पास रहकर धीरे-धीरे विषयोंसे मनको हृटा लो और शान्तिको प्राप्त करो ।' माताके अमृतमय विवेकसरे वचनोंको सुन बालक हरिनारायणके हृदयमें विवेकन्नक्षका अंकुर पैदा हो गया । वह माताके वात्सल्यपूर्ण आग्रहसे घरहीपर रह गये ।

कुछ समय बाद इनके माता-पिताने काशीधामकी यात्राका विचार किया। और घरका सारा मार हरिनारायणपर छोड़कर वे काशी चछे गये। मक्त हरिनारायण घरका काम करने छगे। हिरिनारायण बड़े ही दयाछ और उदार खभावके पुरुष थे। माता-पिताकी अनुपिखितिमें वे घनके द्वारा गरीब अनाथोंकी सेवा करने छगे। उनके घरपर नित्य ब्राह्मण-भोजन, भजन-पूजन और हिरि-कीर्तन आदिका समारोह रहने छगा। धीरे-धीरे घरकी सारी सम्पित्त सेवामें छग गयी। घनका सदुपयोग हो गया। इधर पिता भी काशी-यात्रासे छैट आये। उन्हें जब धन-धान्यादिके

इस प्रकार खर्च हो जानेका पता लगा तो उनका क्राधका पार न रहा । वे हरिनारायणको बुलाकर कहने लगे कि 'अरे, तुझे क्या इसीलिये घर सौंपा गया था ? जा, मुँह काला करके अभी मेरे घरसे निकल जा, एक क्षण भी यहाँ रहा तो तुझे मेरी सौगन्द है।' भक्तको और क्या चाहिये ? वह तो हर हालतमें मस्त रहता है और प्रत्येक स्थितिको अपने प्रमुक्ता विधान समझकर आनन्दमग्न रहता है। वह घरमें रहे या वनमें, उसके लिये दोनों ही जगह समान हैं।

मक्त हरिनारायण माता-पिताको प्रणामकर वनको चल दिये। अन्नपूर्णा भी योग्य पतिकी योग्य पत्नी थी। पतिको वनवासी होते देख, वह घरमें कैसे रहती ? उसने भी पतिका अनुसरण किया। हरिनारायणने जब पत्नीको अपने पीछे आते देखा तो उसे घर छोट जानेको कहा। अन्नपूर्णाके नेत्र अश्रुपूर्ण हो गये, पतिके चरणोंमें गिरकर बड़े ही नम्र शब्दोंमें प्रार्थना करते हुए उसने कहा—'प्राणेश्वर! आप संसारसे उपराम होकर मेरा भी त्याग कर रहे हैं, पर वतलाइये, आपके बिना मैं अकेली यहाँ कैसे अपना जीवन बिताऊँगी ! मेरा मन घरमें कैसे लगेगा ! नाय! मुझे छोड़कर न जाइये, मेरी अवस्था मललीको जल-सरोवरसे निकालकर दुग्ध-सागरमें फेंकनेके समान हो जायगी।' पत्नीके करुणामरे वचनोंको सुन हरिनारायणका हृदय पिश्वल गया। उन्होंने प्रेमसे कहा—'मेरा कठोर शरीर वनके कछों-

को सह लेगा, पर तुम्हारा यह कोमल शरीर वनके योग्य नहीं है, तुम सुकुमार हो, मेरे साथ वनके कछोंको क्यों सिरपर उठाने जा रही हो ? व्यर्थके कष्ट भोगनेसे क्या लाभ ? अपने पिताके घर जाकर रहो, वे बड़े धनी हैं, तुम्हें किसी प्रकारका कष्ट नहीं होने देंगे।' अन्तपूर्णीसे अब नहीं रहा गया, वह रोने लगी, उसने कहा-- 'प्राणनाथ! आप अपने हाथसे मुझे मार भछे ही डालिये. परन्त इस प्रकार वियोगाग्निके भयानक अग्निकुण्डमें फेंककर न जाइये । सुख-दःखोंका भोग प्रारव्यके अधीन है । आपके भाग्यमें दुःख है तो मुझे सुखकी कोई आवश्यकता नहीं, मैं उन द्र:खोंको बड़े आनन्दसे सुखरूपमें ही खीकार करूँगी। पर मैं आपके विरहका दुःख नहीं सह सकती । क्या आप मुझे अकेली निस्सहाय छोड़ वनको चले जायँगे ? नाथ. ऐसे कठोर क्यों हो गये ?' अन्नपूर्णाका गला रुँघ गया, आगे उससे कुछ नहीं कहा गया। वह पतिके चरणोंको जोरसे पकड़कर, सिसक-सिसक कर रोती हुई आँस्रओंसे उनको घोने लगी । पत्नीकी एकनिष्ठाका इस प्रकार परिचय मिळनेपर हरिनारायणकी कृत्रिम कठोरता दूर हो गयी । वह अब 'ना' नहीं कर सके । अनुपूर्णके विश्वस मानको देखकर उनके दयाछ हृदयने उसे साथ चलनेकी आज्ञा दे दी । प्रेमसे अन्नपूर्णाको उठाकर उन्होंने साथ छे छिया ।

भक्त हरिनारायणके गाँव छोड़नेकी बात थोड़े ही समयमें चारों ओर फैल गयी । गाँवकें लोगोंकी उनपर बड़ी श्रद्धा थी।

बे उनको साक्षात् नारदजीका अवतार मानते थे। उनकी दयालुता, प्रेम एवं निःखार्थ सेवाने गाँवके छोगोंके हृद्योंपर अधिकार कर छिया या । अतः उनके वन जानेकी खबर पाते ही लोग उनके दर्शनके लिये दौड़ पड़े । गाँवके बाहर एक सुन्दर नृक्षके नीचे बैठे हुए भक्त-दम्पतीको देखकर, सबने बड़े आदरसे प्रणाम किया एवं उनसे घर छीटनेके छिये प्रार्थना की । पर हरिनारायण पित-आजाको अवहेलना कैसे करते ? उन्होंने सब प्रामवासियोंको समझाकर कहा कि 'प्यारे भाइयो ! मुझे पिताजीकी आज्ञा वनमें जानेकी है. अतः उसकी अवज्ञा कर घर चलनेके लिये आप मुझे न दवावें ।' छोगोंने वहीं डेरा छगा दिया। तीन दिन-तक बराबर हरि-कोर्तनको धूम मची रही, बड़े उत्साहसे छोगोंने भगवान्के मधुर कार्तनका रसाखादन किया, फिर हरिनारायणने सबको समझाकर घर छोटा दिया । अन्नपूर्णीने पूर्णाहुतिके तौरपर गरी बोंको पतिकी आज्ञासे अपने सारे गहने उतार कर दे दिये। जिसने घरके सारे सुखोंका त्यागकर, वनके कठोर दु:खोंको सादर महण किया, वह इन आभूपणोंको रखकर क्या करती !

वहाँसे पति-पत्नी काशी, प्रयाग, गया आदि पवित्र तीर्थोंका भ्रमण करते हुए 'जोगाइचे आवे' नामक प्राममें छोट आये । अन्तपूर्णाको वहाँ रखकर हरिनारायण वनमें कुटिया बनाकर उपासना करने छगे । बारह वर्षकी कठोर तपस्याके फल्ल्स्प उन्हें भगवतीका साक्षात्कार हुआ । भगवतीने आज्ञा दी कि

* * *

'त् नरसिंहपुरमें चला जा, वहाँ तुझे सद्गुरुकी प्राप्ति होगी एवं उन्हींकी कृपासे भगवत्साक्षात्कार होगा।' देवीकी आज्ञानुसार हरिनारायण अन्नपूर्णाको साथ ले नरसिंहपुर चले आये।

एक दिन प्रातःकाल बाह्ममुहूर्तमें उठकर हरिनारायण संगमस्थळपर स्नान करने गये । स्नान करके जलमें ही वे भगवान्-का ध्यान करने छगे । उसी समय नदीमें बाढ़ आ गयी और वे वहीं हूत्र गये । छोगोंने यह खत्रर अन्नपूर्णाको दी । पतिनता सतीका हृदय पतिकी अमङ्गळ्-आशंकासे शोकाकुळ हो गया । वह पतिकी प्राणरक्षाके लिये- श्रीनृसिंह भगवान्से प्रार्थना करने लगी । इधर भक्त हरिनारायणकी अवस्था विचित्र थी । वे ध्यानमें इतने तल्लीन हो गये थे कि उन्हें इन सब बार्तोका पता ही नहीं या। ध्यानकी तल्लीनताने भगवान्के आसनको हिला दिया। वे भक्तके हार्दिक अनन्य प्रेमके अधीन ये, साक्षात् देवर्पि नारदके रूपमें वहाँ प्रकट हो गये । भक्त हरिनारायण दढ़ समाधि लगाये प्रेममें मस्त हो रहे थे; उन्हें नारद जीके आगमनका पता नहीं छगा । उस प्रेममयी अवस्थाको देख नारद प्रसन्न हो गये, उन्होंने मगवान्का मधुर कीर्तन सुनाकर उन्हें सावधान किया और ब्रह्मवीणाद्वारा 'तत्त्वमिस' का उपदेश देकर वे वहाँसे चले गये।

सात दिनतक बाढ़का जोर रहा, फिर जल कम हो गया। अगमवासी, जहाँ हरिनारायण हूवे थे उन्हें खोजने आये और वहाँके पवित्र दर्यको देखकर मुग्ध और आश्चर्यचिकत हो

गये । भक्त हरिनारायण बीणा एवं करताल लिये भगवान्के नाम-कौर्तनमें गस्त हो रहे हैं । उनके नेत्रोंसे आँसुओंकी धारा वह रहीं है । सत्रने उनको प्रणाम किया एवं वड़े आग्रहसे उन्हें नृसिंहजीके मन्दिरमें ले गये । सती अन्नपूर्णा भी पतिके आनेकी सत्रर पाकर मन्दिरमें जाकर पतिके चरणोंमें गिर पड़ी ।

तदनन्तर भक्त हरिनारायण एक वर्षतक नरसिंहपुरमें रहे ।

श्वारों मनुष्योंको उन्होंने भगवान्का पवित्र चरित्र सुनाकर मिक्तमार्गपर लगाया । यहाँसे वे घराशीव नामक प्राममें आकर, वहाँकी
गुक्तामें योदे दिन रहे । फिर तीर्घयात्राके लिये चल पड़े । प्रत्येक
आपादों एकादशीको उनका पण्डरपुर जानेका नियम था । एक
बार जब वे पण्डरपुर जा रहे ये तो संयोगवश उसी दिन नदींमें
बहुत जोरकी बाद आ गयी । घाटपर नीका नहीं थी, एकादशीका
समय भी बीत रहा या, अतः अन्य कोई उपाय न देख उन्होंने
अपना मृगासन जलपर बिला दिया एवं उसीपर सिद्धासन लगाकर
उस पार चले गये । दोनों ओर नदी-तटपर खड़े हुए साधुसन्तों एवं प्रामवासियोंको यह चमरकार देखकर बड़ा आश्चर्य
हुआ एवं भक्त हरिनारायणपर सबकी श्रद्धा बढ़ गयी । वे
पण्डरपुरमें आकर मन्दिरमें दर्शनको गये, उस समय एक ऐसी
घटना हुई, जिमने लोगोंको और भी आश्चर्यमें डाल दिया । उस
घटनाको कविके शब्दोंमें ही सुनिये—

्वेतलें पांडुरंग दर्शन, प्रेमें केली प्रदक्षिणा, जयजयकार भाला पूर्ण, पंढरपुरी तें काली।

F. 41 mm

साक्षात् पूर्णं परब्रह्मं भगवान । येऊनि स्वामीसि बोलता जाण, म्हणे तुमची वारी पावली संपूर्ण । प्रेमालिंगन दीघलें। कार्तिकी आपाढी एकादशीं। आम्हीं येऊँ तुम्हां पाशीं, भाक देऊनि सामी सी । जाते भाले राउकी ।

'उन्होंने पण्डरपुरमें आकर भगवान् पाण्ड्ररंगके दर्शन करके उनकी प्रदक्षिणा की, सब साधु-सन्तोंने, भगवान्का जय-जयकार किया । उसी समय पूर्ण ब्रह्म पाण्डुरङ्गने प्रकट होकर मक्त हरिनारायणसे प्रेमालिङ्गन किया एवं कहा कि 'तुम्हारी वारी* सुझे पूर्णरूपसे मिल जुकी । मैं हरिशयनी एवं हरिवोधिनी एकादशीको तुम्हारे पास आ जाया करूँगा ।' इस प्रकार कहकर भगवान् अन्तर्वान हो गये । तबसे मक्त हरिनारायण आपाड़ी तथा कार्तिकी एकादशीका महोत्सव अपने घरपर ही करने उमे !

इस प्रकार बहुत समय बीत जानेपर एक बार हरिनारायणने शेपादि. सेतुबन्य रामेश्वर आदि तीर्थोको यात्रा की । उस समय घूमते हुए वे समर्थ रामदास, खामी रङ्गनाथ, खामी जयराम, तुकाराम महाराज आदि सन्तोंके दर्शन करके अपनी कन्या भीमाबाईके घर आये । यहाँ उन्होंने अपने अन्तकालका समय नजदीक बतलाकर सबको सचेत कर दिया । सती अकपूर्णा पतिके माबी

छ आपादी पुकाद्यीको निर्यामतरूपसे पाण्डुरंगके दर्शनार्य वानेका नाम 'वारी' हैं।

वियोगके दु:खसे व्याकुळ होकर पतिकी आज्ञा ले पहले ही अपने नयर शरीरको छोड़कर परमधामको चली गयी। भक्त हरिनारायण वहाँसे 'वैनवड़ी' नामक प्राममें आये। वहाँ उनको गंगास्नानकी इच्छा हुई। भक्तकी इच्छाका मागोरथी गंगा तिरस्कार न कर सकीं। चयं प्रकट हो गयीं एवं भक्तकी इच्छाको पूर्ण किया। भक्त हरिनारायण गंगास्नान करके सन्ध्या-तर्पण-देवार्चनादिसे निवृत्त हुए। गीतामें वर्णित आसनसे वैठकर वे योगमार्गके अनुसार प्राणको खोंचने छगे। उस समय उनका शरीर दिव्य कान्तिसे तपाये हुए सुवर्णके समान चमकने छगा। उनके शरीरके अल्डोकिक तेजसे चारों ओर प्रकाश फैछ गया। नेत्रोंकी अर्घोन्मीछित अवस्था थी। तदनन्तर वे पूर्ण समाधिमें स्थित होकर करामें छीन हो गये। इस प्रकार शाके १६४७ में 'वैनवड़ी' ग्राम-में उन्होंने अन्तिम समाधि छी।

इनके शिष्योंकी बहुत-सी शाखाएँ महाराष्ट्रमें फैली हुई हैं। भक्ति, ज्ञान, वैराग्यसम्बन्धी बहुत-से पद्योंकी भी इन्होंने रचना की थी, जो अभी प्रायः अमुद्रित ही हैं।

🕶 गीताप्रेस,गोरखपुर 😂

की

पुस्तकोंकी सांशिप्त

सुची

आवाद १९९२

(१) पुरतकोका दिशेष विकार तथा पूरा निवंस जानमैके किये बचा चुनीयने सुरत मेंगास्ये ।

(क) बसारे वहाँ अनेक ब्रोहिक धार्मक छोटे, वहे, रवीव अवेद स्रोह चित्र सिक्क हैं। विशेष साम्बर्धा

कि किन्सची असी वृत्राव्ये।

कुछ ध्यान देने योग्य वारों—

- (१) हर एक पश्चमें नाम, पता, डाकबर, जिला बहुत साफ देवनागरी अक्षरोंमें लिखें। नहीं तो जवाव देने या माल चेजनेमें बहुन दिखन होगी। साथ ही उत्तरके लिये जवाबी कार्ड या टिकट भाना चाहिये।
- (२) अगर ज्यादा कितायें भालगाड़ी या पासलसे मँगानी हों तो रेलवेस्टेशनका नाम जनर लिखना चाहिये। आर्डरके साथ कुछ दाम पेशगी अजने चाहिये।
- (३) थोड़ी पुस्तकींपर डाकबर्च अधिक पड़ जानेके अयरि एक रुपयेसे कमकी ची० पी० प्रायः नहीं मेजी जाती, इससे कमकी सितार्गेक्ष शीमत, डाकमहस्त और रजिस्ट्री-वर्च जोड़कर दिवट भेजें।
- (४) एक रायेसे कमकी पुन्तकें हुक्योम्डसे मँगवानेवालें स्वानेवालें स्वानेवालें स्वानेवालें स्वानेवालें । (पुस्तकोंके सूच्यते) अधिक मेजी। बुक्र गेरटका पैकेट प्रायः गुग हो जाया करता है। अतः इसं प्रदार नोवी हुई पुरतकोंके लिये हम जिस्सेवार नहीं है। इसीवान-नियम
 - से करकी पुस्तकांपर कमारान नहीं दिया जाता । १) से
 १०) तक १२॥) सैकड़ा, फिर २५) तक १८॥) सैकड़ा, इससे
 ऊपर २५) सैकड़ा दिया जाता है ।
- २०) भी पुस्तन होनेले प्राहकको रेळवेस्टेशनपर मालगाड़ीले भी डिलेवरी दी जागगी, परन्तु सभी प्रकारकी पुस्तकें लेनी होंगी, केवल गीता नहीं। दीपावलीसे दीपावलीसक १०००) नेटकी पुस्तकें सीप्रे थार्डर मेंनकर लेनेपालीको ३) सेकड़ा एमीशन और दिया जायगा। जल्दीके कारण रेलपार्सल्स मँगगानेपर आधा भाड़ा दिया जायगा। इससे अधिन वसीग्राके लिये लिखा-पढ़ी न करें।

पता-गीताप्रेस, गोरखपुर

गीतात्रेसकी पुस्तक

-[श्रीमांकरभारयका सरत्न क्षिन्दी-असुराद } दूसरा 🕟
🦖 संस्करण आवश्यक परिवर्त्तनके साथ छ णा है, इसरी मूल भारत है
और भाष्यवें सामने ही श्रंधे लिसकर एउन और सम्प्रतेयें
🗦 शुगमता 🕶 टी गयी है। श्रुति, स्मृति, इतिहालोंके उद्रहण 📑
क्ष्य प्रमाणीका सम्भ प्रथे दिया गुरु है। प्रष्ट ५१६, ३ भिन्न-पूर्
र्वे असाधार स्य जिल्हा २॥), बदिना जिल्हा जिल्हा
विकासन्य होता-मूकः, पक्केतः, जानम्, साधारसः आगादोकाः 🐇
ि दियाणी, प्रभान और सुभग वित्य पूर्व व्यागसे अगवकारिः 🐪
🥍 सर्दित, मोडा टाइप, कपएंकी जिल्हा, प्रष्ठ २७०, बहुरंगे ४ वित्र सु : १)
विस्तर गणकी या न्युकराची डोका, शीता. स्म्यूर दोकी सरह, मू० 🎌 १९
श्रीभवागवतीयः-सराही टांका, हिन्दीवं(१) वार्काके समात-मृहय-१।)
बी मुद्रगः द्वीता-गायः सभी विषय १।) वालीके समानः विशेषता
कर है कि सोकींबे सिरेपर मापाये ध्वा हुआ है, साइड ,
्र व्याप काइप कुछ छोटे, युष्ठ ४६८, सूच्य श ≊), सनिक्य ्रा शि=)
भौमद्भग्दर्शता-पंगला दीका, गीता नं ० ५ की तरह । सूर १), प्रश्री
कार्यक्षाया । जिल्लामा विशेष ।
श्रीर स्थानमें भगवस् प्राप्ति बामक विवन्धसदिस । साहज मणाजा,
स्रोह सहित्य संवयन्त्रमात्र वासक विस्त्यात्त्व । साहुण संवाकः, स्रोहा हाहुगः, ३ ३ व. १९७ की सचित्र पुरुषका सूर्वय ॥), संव *** ॥॥
ोहा-मूल, मोट्रं अवस्थाबी, सचित्र, मूल्य (-), सजिब्द 💛 🖚)
क्षित्र -सत्वारण भाषांदीका, वाकेट-साइज, समी विषय ॥) बाकीके
समान, सन्तिम, पृष्ट ३१२, सूक्ष्य 🔊 🚻 , स्वित्वर 💛 🎉 🖹
कार नेराया, इसमें श्रीक नहीं है ('अवर मीटे हैं, १ जिल्ला, मूर्व 1), संव ्रास्त्र
मीलर-१७ साथीजी <mark>सार्व २ × २॥ इच्च, स</mark> जिल्द, सूर्व 💎 🤲
तींका-कर, रेप्पुसद्क्रवायसदित, तिबद्ध और स्वित्रद, सूर्व " 🙀
तीता- का × २० इस सामुखके को पचीत सम्पूर्ण, मूर्
वीतर प्राप्तां -एन १९६५ की, मूल 1) स्विक्टर
विता करी (अध्य Dist) स्कृतिक मीताबाँका पुरिषय मूर्व ते
The state of the s

```
भीशीविष्णुपुराण-हिन्दी-अनुवादसहिस, आठ सुन्दर चित्र, एक
    तरफ रहीक और उनके सामने ही अर्थ है, साइज २२×२९
    ट पेजी, पृष्ठ ५४८, मूर्व साधारण जिल्द १॥), कपदेकी जिह्द २॥।)
अध्यारस्रामायण- सटीक, ८ चित्र, एक तरफ क्षीक और उनके
  े सामने ही जर्थ है, दूमरा संस्करण छप नवा है। मृ० १॥।), स०. २)
वैस-योग-सचित्र, रूप्टक-श्रीवियोगी इरिपी, पृष्ट ४२०, बहुत मोटा
     पुष्टिक काराज, स्रथ्य अजिल्द ११), सजिस्द
श्रीतकाराम-चरित्र-दक्षिणके एक प्रसिद्ध सन्तका पावन चरित्र हैं, ९ सादै
     किन्न, पृष्ट ६५४, सुन्दर् हणाई, ब्लेज कागज, मू० १८) स० १॥)
अस्तिका-विद्यान अर्थात् श्रामद्भगवद्गीताका, मुख्महित हिन्दी-पद्मा-
     लवाद ! दी चित्र, पुरु २०५, गीटा कागज, सू॰ III), स॰
 दिनग-पश्चित्रा-सरक 'हिन्दी-मावार्थ-सहित, ६ चित्र, अनु०
     श्रीहतुतावप्रतादची पोद्दार, २रा संस्करण भानार्थमें अनेकी
    आवर्यक संशोधन किये तथे हैं तथा परिशिष्टमें कथाभागने
     ्रण द्वष्ठ और जोड़ देनेपर भी मूल्य १ ). सजिल्ह
 गीतादली-सटीक अनु०-श्रीमुनिटालजी इसमें रामायणकी तरह
     सात वाण्डीतें श्रीरामचन्द्रतीको लोलार्थोका भवनींमें वरा ही
      सुन्दर दर्णन है । एए ४६०. ८ चित्र. सू० ६) सजिल्द
 मांगरतरस प्रहाद−६ रहीन. १ सादे चित्रीमहित, पृष्ठ ३४०, मोटे
      गक्षर, सुन्दर छपाई, मूल्य ३) सजिल्ह
 श्रीश्रीर्धतन्य-एरितावस्त्री ( म्हण्ड १ )-मिस्त्र, श्रीचेतन्यवेवस्री वर्डा
      जीवना । पृष्ठ २६०, मू० ४।८), सनिस्द
 धीषी देतन्य-प्रितावको ( सण्ड २ )-सचित्र, पहले खण्डके आगेफी
     लीलाएँ । पृष्ठ ४५०, ९ चित्र; मूल्यं १८), तनिस्द
  श्रीश्रीवेतन्य-चरितावर्टी (खण्ड ३), पृष्ठ २८४; ११ चित्र,
      मुख्य १), सजिहर
                                                             31)
 श्राधनेदैताय-चरितावली-( खण्ड ४ ) . १४ : २२४, चित्र
      सू० ॥≈) सजिदद
  श्रीश्रीचैतन्य-चरितावली-(राण्ड ५) ए६ २८०, चित्र १०, सू०।।।)६० १)
                ्पता जीताप्रेस, गोरखपुर
```

•
्र ४९६, सूक्य ।।।-) सजिहा 😬 १५-)
एकावद्य स्ट-ए-मिन्न, सरीक, एह ४२०,
केवक ॥), सजिक्द १)
रक्षील ३ सावे चित्रीसहित, पृष्ट २४०, गुन्दर
्, सुक्य (1)), सकिस्त)
क्ति, शाम १ - सन्त्रम्, लेग्वक-श्रीचयद्यारहर्ता गोरान्त्रहा,
पह अन्य परम तथयोगी है। इसके अन्तरे धर्मी आहा,
ुक्षिमचार्यः भेम और विकास एवं मिस्यके बर्तायमं सस्य
कि विवाह ए और सबसे शेसा, अध्यन्त बानन्द एवं दान्तिको
ं ब्राह्मि होना है। एड इंप०, स्वा: !!>), स्विक्व · · · !!!)
-िम तामणि आग २-सचित्र इसमें होक और परलोकके सुद्ध-साधनकी
राह बतानेवाले सुविचारपूर्ण सुम्पर-सुन्दर लेखीका अति उत्तम
संग्रह है। प्रष्ठ ६०० से अपर, मुख्य ॥ 🔑 सजिबद (१०)
ैं देश-शीर क्रांस्मान्यसाद्या भोदारके २४ लेख और ६ कविताक्षीका
शंित र म सुन्दरं प्रत्य, पुरु ३५०, सुरु ॥=), सरु ः ।॥-)
श्रीकानेशर-दारित-दक्षिणके अस्यन्त प्रसिद्ध, सबसे अधिक प्रभाव-
शास्त २५% श्रीज्ञानेवरी गीतर के कर्ताजी जीवनदायिशी
इ.तर्स और उनके टपदेशीका नमूखा। सचित्र, प्रष्ठ ३५६, सू॰ III-)
िक्श्सार्थ सारा न्यांकरेकाच्य हिन्दी-ठीका-सहित, सचित्र, भाष्यके सामने
ही रस्टा अर्थ स्त्रपा गया है । विस्थ-पाठके स्त्रीत्रीमें सवसे अधिक
प्रकार विध्युसद्धनासका ही है। भगवानके नामोंके रहस्त
रणानी लिये यह सर्थ लहितीय है, मूह्य ।।≠)
क्षांत नतावरी-लेखक स्वामीको श्रीमोलेबस्याको, सास-सास
क्षानिक अर्थसम्बद्धित संग्रहः एक पेयम् सून श्रुतियाँ और
्रात्तिक कार्य क्रांके अर्थ रक्के भागे हैं, सूर्व ा।)
The state of the s
क्या-पहल, आस्तिक महिरीक, विद्वान क्या, भक्त-जानी, गुहस्मीर
क्ष्मार्थाः करमा स्वाक्षः । । । । । । । । । । । । । । । । । । ।
इक्रक्तित मार्ग. १८ १९, सिवन, संक्री, स्वाप

•

शीएकनाथ-वरिग्र-छे०-एरिभक्तिपरायण पंग छहमण रामचन्द्र
पांगारकर, भाषान्तरकार-पं॰ श्रीछक्ष्मण नारायण गर्दे । हिन्दी-
में पुकनाथ सहाराजकी जीवनी अभीतक नहीं देखी, मुख्य " ा)
दिनचर्या-(सचित्र) उठनेले सोनेतक करनेयोग्य धार्मिक वार्तीका
वर्णन । निरय-पारदी श्रीम्य स्तीग्र शीर भजनीसहित । सूच्य ।।)
विदेक-मृडासणि-(सानुवाद, सनित्र) प्रुष्ट २२४, सू० ।=), स० ॥=)
श्रीरामकृष्ण परमहंग-(सचित्र) हुम अन्यम हर्न्होंके सीवन सीर
ज्ञानगरे उपदेशोंक संग्रह है। ए० २५०, मूक्य 😬 🗈
ईशाबास्योपनिपद्—साटुयाद शाहरमांष्यसहित, मचित्र पृष्ट ५० म्० 🖹)
देनियनियद्—सानुवान जाह्नरभाष्यमहित समित्र प्रष्ट १ ५६ सूत्र ॥)
प्रहोपनिषद्—सानुवाद शाः स्थाप्यमहित् मचित्र प्रष्ट १७२ मृह्य ॥-)
सुण्डकोपनिषद्-मानुवार जाहरभाष्युमहित, मिन्त्र, प्रह. १६२, सूर ।
व्रक्षात्राप्यद्रमानुवाद् जाहरभाष्यतिहत्त, सन्तित्र प्रष्ट ३३०० मूल्य ।⊜)
उपरोक्तः पानीं उपनिषद् एक जिल्हमें सजिहद (उपनिषद-नाष्य
क्षाद है) अस्य इनस्तर (क्षानुस्ति श्रीक व्यवस्ति साम्बर्ग (क्षानुस्ति सान्
अस-भारती-७ चित्र, क्षविताम २ भन्तीका नरल कथाएँ, मु॰ ाई)
भक्त बालक-सोबिन्द, सोहन सादि बालक्सकारीकी कथाएँ हैं
भक्त भारी-सिनीमें भानिक भाव बटानेके किये बहुत उपयोगी कथाएँ हैं।-)
अन्तपन्नरा-गत् पाँच कथासीकी पुस्तक सर्ह एस्थेकि लिये नहें कामकी है।-)
लादर्भ साल-राजा जिहि रिन्ति व अस्वरीय जादिकी व याएँ, ७चित्र सूर्वा-)
भक्त-पन्तिका-भगवानुदी पारे भक्तीकी मीठी-मीठी दाते, अविद्य, मुर्ग
भक्त-सप्तरत-सात भक्तिका मनीहर गांधाएँ, ७ चित्र, पृष्ट १०६, सूर्ण 📂
भक्त-इत्म-छोटे-बदे, का-पुरुष संयक्तेपद्ने योग्य प्रेसम्बन्धिय प्रस्थानित्य प्रस्थानित्य
श्रेकी अफ-६ चित्रों में सुन्नोकित, मूहवं
यूरोपको अक्त लिको - श्विकोत सुशोभित, महत्व
गीतामें भिक्तयोग-(सचित्र) हस्तर-श्रावियोगी उरिजी, मू० ।-)
प्रेस-वर्शन-(देवपि नारदरचिन भक्तिःसूत्र) सचित्र, सार्थ, सर्टाक् ।-)
परगाथ-पत्रावली-श्रीजयद्यालजी गोयन्एकाके ५१ कस्याणकारी
पत्रीका संग्रह, पृष्ट १४४, पृण्टिक काग्रक, सूला
माता-शीलरविन्दकी अंगरेजी पुन्तक (Mother) का अनुवाद, सूर।)
प्रनिके रिरेन्(सचित्र) लेखक-सामोशी धीभोलेवाबाजी, मृ० ।)
क्रानयोग-श्रीभवानीशंकरकीके क्रानयोगसम्बन्धी उपदेश, पृष्ट १ २४ सू० ।)
धनकी साकी-रामगा १० चित्र, मृत्य
श्रीवदरी-केश्सकी झाँकी-सचित्र, सूरवा
पता गीताप्रेस, गोरखपुर
Same and the said of the

```
सानुवाद, सचित्र) हमसे विचयभागका सुचळल
                      इपाय बतावे गये हैं, संख्य
                                                   :3)11
            बीहुनुमानंत्रसादकी पोहार, एव १७२, मृह्य 🖘)
            -बाताकी अनेक बार्त समझनेके छिथे उपयोगी
        मीसा-पर्शक्ताकी मध्यमाकी गढ़ाईमै रमदी गर्या है, जून है)।।
           -श्रीह्नुमानप्रसादजी योहार, सचित्र, एए ७२, मू० =)।।
             के - सामाजी श्रीमोलेबाबाजी, स्
            मुल श्लोक और अर्थसदित, सचित्र, सूर्
        -यह महुक भक्तीके वहे कासकी वीस है, मूर · · · =)||
   *Its Mysteries and Control-By Swami Sira-
       Saraswati. pago 200, price
   Amarience of God-By Pancit Malav yaji. As. 2
                   आमन्दकी छहरें
                   सचित्र, सूर्
        ·office)
                                       सन्ध्योपासन हिन्द्रीन
                  विष्यु सहस्रानाम
  हिंतीय भाग =)
                  मूळ )।॥,स॰ न)॥ विधिसाहेत
  वृद्धिय आग =)
                                   ·)। बालिबैयदेवविधि
                  ईश्वर-मृहण
                  अस्य गोसाइ-वारिय:)। प्रधातरी सटीवा
                                      सेवाके मन्त्र
                   गीलका : सङ्ग
                                      सीपांसामग्रजन
                    विषय 📉
  खुक् और उमकी
                                      अहिरिसंकी तंनधुन
                   मनको वश करने
 ति उपाप -)॥
                                    🔃 गांता हिताय
                     उपाय सचित्र
 ोन्ह सांख्ययोग
                                       अध्याय सरीक
                    संध-महाजत
ओर निष्कांम
                                      पाठ अलखोगदर्शन
क्षार्थीयाः
इ.स.च्या
                                       ं सृरू
                                      चर्म क्य
                                        दिका सन्देश
 प्रयोग अंदरशिंस-)॥
                                        क्षी 🗗 पाप आधा
 पुष्ट प्रवास्थान)॥
                                        ्रामायणां क
```

क्ल्याण

भाक्ति, ज्ञान, वेराग्यसम्बन्दी साचित्र घार्निक गासिक पत्र, वार्षिक सूद्य ४८)

कुछ विशेगांक

श्सायणाक्ष-एष्ट ५१२, तिरी-ह्बरीगे १६८ वित्र, स्०२॥≦), स० ६≅) श्रक्ताद्व-तासरे वर्षकी गुरी काष्ट्रलम्हित, सूत्र ५६), स्विक्द का॥≤) श्रीदिवाद स्परितिहातू-एष्ट ६६६, वित्र ६८८, सू० ३), स० ३॥) म - जाट्ये वर्षकी पूरी पाष्ट्रक्रमित, सू० ४≤), स० ५॥-)

्राट्य वर्षा पूर्व पार्यकार्या पूर्व पार्यकार्या पूर्व वर्षा पूर्व वर्षा पूर्व वर्षा पूर्व वर्षा पूर्व वर्षा प्रतिकार प्रतिकार प्रतिकार कार्या वर्षा प्रतिकार प्रतिक

् शुंट है) सर्व है।)

(एनन कर्तालन नहीं है, राज-महस्क एमार) -अवस्थापक—कस्थाण, गोरखपुर

चित्र

: छोटे, बड़, रंगीन और सादे धार्पिक चित्र

श्रीकृष्ण, श्रीराम, श्रीविष्यु और श्रीशुवने दिन्य दर्शन !

जिसको देखकर इने भगवान् बाह धावें, वह वन्तु हमारे कियें संग्रहणीय है। मन्त्रें धार सगवान्ते सारव एवं एवकी महार मोहिनी छोळाशोंके सुन्दर दश्य-चित्र हमारे सारागे रहें तो पन्ते देखकर कोड़ी देशके किये एकारा सन सगवन्तरस्थन कर बाहा है।

भे मुन्दर चित्र किसी खंदामें इस उदेशतका पूर्ण कर सकते हैं। इनका संप्रतकर प्रेमसे वार्ट्स आपको दृष्टि निश्य पहली हो, दहाँ घरमें, वैदकमें और मन्दिराम लगाइने एवं चिनोंके बहाने मनावान्को सादकर अपने मन-प्राणको प्रकृष्टित कीजिये।

हमारे यहाँ १५×२६, १४×२०, १०×१४, औ×१० धीर प्रथा के वहें शीर छोटे चिन सस्ते सस्ते दानीमें मिळते हैं।

्चित्रीकी जुची घलग सुपत सँगमाइये ।

पता-गीताप्रेस, गोरखपुर

सव अवस्थाओं में परमात्माके सक्तपका अनुभवकर भक्त कहना है—

राग-भैरबी, ताल-धुमाली ।

हेल दुःखका वेप धरे में नहीं उहुँगा गुगसे नाथ! जहाँ दुःख वहाँ देख तुम्हें में पकदूँगा जोराँके साथ! नाथ! छिए। छी तुम मुँह अपना नाहे अति आधियारेमें। में लूँगा पहचान तुम्हें एक कोने ग्रंग सारेमें। रोग, शोक, घनहानि, दः प्रः अपमान होए अति दारुण होता! सवमें तुम, सव ही है तुममें अथवा सव तुम्हूर ही वेप ॥ तुम्हरे विना नहीं कुछ भी जव, तव फिर में किसिलिये डहूँ। मृत्यु-साज सज यदि आओ तो, चरण पकड़ सानन्द महूँ॥ दो वर्शन चाहे जैसा भी, दुः वर्शन धारण कर नाथ! जहाँ दुःख वहाँ देख तुम्हें में पकड़ूँगा जोरांके साथ॥ (पत्र-पुण्यसे)